10537

Seeta wife of a Lawyer

सुहागरात

Soohag-Raat.

मृत्यु की नग्न छाया को देख कर मरते हुए मानव के मुख पर सम्भवतः वैसी भयानक छाप नहीं लगती होगी जैसी कि अनिल के मुख पर लज्जा से सिकुड़ी हुई विवाह-वेदी पर बैठी हुई भावी पत्नी के काले हाथ को अपने कोमल गौरवर्ण हाथ पर रक्खे हुए देख कर पड़ गई। घृणा से उसका चन्द्रोज्वल मुखमण्डल एक क्षण को स्याह पड़ गया। आँगन में खचाखच भरे हुए जन-समूह में से यदि किसी की तीक्ष्ण दृष्टि इस ओर जा पड़ी तो वह अनिल की सलहज थी। वधू की भाभी का अन्तस्थल काँप उठा, किन्तु दूसरे ही क्षण सन्देह को बरबस दूरकर उसने ढोलक के साथ उठने वाला स्वर कुछ तीखा कर दिया।

पंडित तेज़ी से मंत्र पढ़ाते जा रहे थे। वधू तो पहले से ही अस्पष्ट स्वर में बोल रही थी, अब वर का स्वर भी अस्पष्ट हो गया, किन्तु गीतों की तीव्र ध्वनि ने यह भेद किसी को भी जानने न दिया।

धीरे धीरे विवाह की रीति पूरी की गई।

जीवन भर के लिये अनिल के साथ एक निरीह बालिका

का भाग्य बाँध दिया गया। अनिल स्वप्नवत सब कुछ किये जा रहा था और बधू का अनिश्चित भाग्य-चक्र किस ओर बह रहा था, यह कौन जानता है ?

अनिल के पिता बीस वर्ष पूर्व ही संसार का त्याग कर चुके थे। पाँच वर्ष के पुत्र और वर्ष भर की कन्या को गोद में लेकर सीता ने जीवन-यात्रा आरम्भ की थी। श्वसुरालय में तो कोई था ही नहीं। चाँदनी चौक में दो दुकानें और नील के कटरे में दो मकान थे। दुकानों का किराया तीन सौ रु० माहवार और एक मकान का पचास रु० आ जाता था। एक मकान में स्वयं रहते थे। दुमञ्जिला मकान पक्का और स्वच्छ था। अनिल के पिता वकील थे। आमदनी साधारणत: अच्छी ही थी; छ: सात सौ रु० मासिक आ जाते थे। सीता सुगृहिणी थी। आनन्दपूर्वक अमीरी ठाठ से परिवार का व्यय चल रहा था। मालिक की मृत्यु हो जाने पर तीस वर्ष की विधवा सीता मृत पति के वृद्ध मुंशी धनसुखलाल के सम्मुख पहली ही बार श्राद्ध से दो दिन पहले निकली। विधवा ने बहती हुई आँखें पोंछते हुए गम्भीरतापूर्वक कहा—"मुंशी जी, उनसे सदा ही सुनती थी कि आप मेरे मृत श्वसुर के समय से ही इस परिवार के हितचिंतक हैं। आज वह भी जीवित नहीं और उनके पुत्र भी नहीं, अत: आप ही मेरे श्वसुर के स्थान पर हैं। आप से अब पर्दा कैसा ? उनके वंशज इन दो नन्हें बालकों को आप ही मनुष्य बनाइये। ओह, आज मेरा बड़ा मुन्ना जीवित होता !" विधवा ज़ोर ज़ोर से रोने लगी। वृद्ध मुंशी की आँखें भी भर आईं।

मृत स्वामी तथा उनके पुत्र की स्मृति ने वृद्ध का हृदय कचोट डाला।

देर तक रोते रोते दोनों चुप हो गये। वृद्ध ने धैर्य्य धर कर कहा—"बहू, तुम क्या मेरी बेटी नहीं हो? अनिल और मुन्नी क्या मेरे कन्धों पर बैठ बैठ कर बड़े नहीं हुए हैं? तुम चिन्ता न करो, भगवान सब पार लगा देंगे। बहुत दिन नौकरी की, मालिक का नमक बहुत खाया। बस अब और नौकरी नहीं करूँगा। इन्हीं बाल-गोपाल की सेवा में जीवन बीत जायगा।"

विधवा ने मन ही मन वृद्ध के चरणों में प्रणाम करके सच्चे हृदय से कहा—"हे भगवान्, तुम्हीं अनाथों के नाथ हो।"

श्राद्ध के दिन नरम पूरी और ख़स्ता कचौरी चबाने तथा हलवाई की प्रशंसा या बुराई करने के पश्चात् फिर बिरादरी के भद्र पुरुषों ने आज अठारह वर्ष बाद इस परिवार की ओर कृपा-दृष्टि की। इन अठारह वर्षों में इस अनाथ परिवार का सहारा केवल मुंशीजी थे। मकानों के किराये वसूल करने से लेकर बच्चों की पढ़ाई तक सारा भार मुंशी जी पर ही था। सीता तो उन्हें पिता ही समझती थी। बच्चे भी बाबा जी से बहुत हिले थे। तीन साल हुए मुंशीजी की दौड़-धूप से ही दरियागंज के रईस सुन्दरलाल कपूर जौहरी के पुत्र के साथ अमिता का विवाह हो गया था। दस हजार की गहरी रक़म, जो सीता ने अत्यन्त परिश्रम से जोड़ी थी, निकल तो गई पर लड़की भले घर पहुँच गई। इसी बीच कोई छः मास हुए अमिता की गोद भर गई। नन्हा बालक साक्षात्

देवता का अवतार ही था ।

निश्चिन्त मन से मुंशीजी की सहायता से सीता ने अन्तिम कर्त्तव्य भी कर डाला। पुत्र का विवाह-कार्य भी आज सकुशल सम्पन्न हो गया। वधू के पिता आगरे के सुप्रसिद्ध डाक्टर हैं। वधू सुशीला, गुणवती और योग्य है। सीता ने पहली बार जब सावित्री को देखा तो खिल उठी। दसवीं तक पढ़ी, गुणवती और सुशीला बालिका की सरल लज्जा सीता को बहुत ही भायी। पर अनिला ने माँ से कहा—"माँ, लड़की कुछ साँवली है।" माँ ने उत्साहपूर्वक कहा—"अरी देखती नहीं, मुँह पर कैसी सुन्दर छवि है ?"

नवयुवक, भावुक, कल्पनाप्रिय, अनुभवहीन तेईस वर्ष के अनिल ने भी फ़ोटो देखकर स्वीकृति दे दी। किन्तु, दुर्भाग्य, चित्र मुख का रंग तो दिखा सकता ही न था। माँ और बहिन ने भी इस विषय में कुछ न कहा।

बाजों की तीव्र ध्वनि में सावित्री को सास परछन करके घर में ले आई। नन्हें बच्चे को दाई को सौंप कर अनिला ने भी इस एक मात्र अवसर पर दिल खोल कर गीत गाये। नववधू लज्जा से सिकुड़ी ही जा रही थी।

वृद्ध मुंशी धनसुखलाल के काम-काज का तो ठिकाना ही न था। मुंशियाइन को मरे तो बीस लम्बे वर्ष हो चुके थे। बड़ा लड़का कानपुर की किसी मिल में सवा सौ रुपये पा रहा था। छोटा देहली के ही किसी दफ़्तर में सौ रुपये पा रहा था। मकान

बाप दादा के ही जमाने का चला आ रहा था। पिछले साल छोटे लड़के का विवाह भी कर चुके थे। अब यह मानो जीवन में उनका अन्तिम ही कार्य था। बड़े उत्साह से निमन्त्रित लोगों को खिला-पिला रहे थे। वृद्ध पान चबाते हुए कहते, "खूब किया मुंशीजी, ऐसी मिठाई तो बस तुम्हारे वकील साहब के विवाह पर खाई थी। तब भी तुमने ही किया था। कहाँ से हलवाई ले आते हो, भई। कचौड़ी खूब खस्ता हुई।"

वृद्ध मुंशी स्वर्गीय मालिक की याद में गीली हुई आँखें पोंछ कर कहते,—"सब भगवान् का प्रसाद है।" और फिर काम में लग जाते।

नवयुवक चुटकियाँ लेते हुए मसनद के सहारे बैठे एम. ए. के विद्यार्थी, सहपाठी मित्र वर से कहते,—"यार, कचौड़ी खिला कर ही बिदा न कर देना। भई, भाभी के हाथ के पान भी खिलवाना।"

अनिल खिन्न मन से कुछ कह देता। उसकी मनस्थिति, ठीक न थी। इच्छा होती थी कि दौड़कर नववधू का मुख माँ के सम्मुख करके कहे—"माँ, तुम्हें संसार भर में यह काली-कलूटी लड़की ही अपने लड़के के साथ बाँधने को मिली थी? तो फिर अपनी कहारी ही क्या बुरी थी? उसे ही मेरे गले बाँध देती।" पर अवसर न था। मन मारे बैठा रहा। भोजन भी एक आधी पूरी से ज्यादा न कर सका। मित्र गणों ने चुटकियाँ लीं, 'हाँ, आज भला भूख क्यों लगेगी?" "नहीं यार, आज कुछ पेट ठीक

नहीं है।" "हाँ, सो तो अभी कुछ दिन ऐसा ही रहेगा। नई सेवा करने वाली मिली है न?" "भई वाह, पेट भी वक्त से खराब हुआ।" "अब भाई तब ही खायँगे जब कोई सिर की कसम दिला कर खिलायँगी।"

चुटकियाँ चलती रहीं। अनिल में उत्तर देने की भी सामर्थ्य न थी। वह चुप ही रहा।

रीति-रिवाज हो जाने के पश्चात् अनिल को रिश्ते की एक भाभी ने एक कमरे में ला बिठाया। आगे की कल्पना से ही अनिल चिढ़ रहा था।

उसी समय अनिला सावित्री का नख-शिख-पूर्ण शृङ्गार कर रही थी। सावित्री लज्जा से दबी जा रही थी। मायके से साथ आई हुई दासी भी सहयोग दे रही थी। सहसा अनिला ने अपने दुग्ध-श्वेत हाथों से सावित्री का मुख ऊपर उठा कर कहा—"भाभी, हाँ भाभी ही कहूँगी, रिश्ते में बड़ी हो न? भला मुझ से यह लज्जा कैसी? मेरी तो तुम छोटी बहिन सरीखी हो। मेरी कोई छोटी बहिन नहीं; अगर तुम्हीं से वह साध पूरी कर लूं तो क्या कोई हानि है? देखो, भाभी तुम मुझ से लज्जा न करना। तुम तो मेरी सखी हो, बहिन हो। हाँ, इधर देखो तो।"

सावित्री को जीवन में यह पहला ही ऐसा अवसर मिला था जब कि किसी अपरिचिता ने इस खुले स्नेह से उसका स्वागत किया हो। स्वभाव से ही मितभाषी, लज्जानत सावित्री प्रत्युत्तर न दे सकी, पर उसका समस्त प्रेम इस अशिक्षिता गृहस्थ रमणी के

चरणों पर बिखर पड़ा। उसने सम्हालने का यत्न भी न किया। केवल चुपचाप ननद के चरण छू लिये।

"यह सब नहीं होगा। मैं कह चुकी हूँ कि तुम मेरी सखी हो। अच्छा, बातें तो फिर होती रहेंगी"—कह कर बरबस अनिला सावित्री को कहाँ ढकेल आई, यह सावित्री जानती थी। अनिला ने दरवाज़ा बाहर से बन्द कर दिया। दो रमणियों के मुक्त कण्ठ से हँसने का शब्द गूँज उठा। सावित्री सहमी-सी किवाड़ से लगी खड़ी रही।

शायद वर द्वार की ओर पीठ दिये आरामकुर्सी पर बैठा था। द्वार खुलने, बन्द होने और बाहर खिलखिलाने का शब्द भी उसने सुना। लगभग पाँच मिनिट तक सन्नाटा रहा। सावित्री हैरान थी कि यह कैसा स्वागत है। सहसा वर ने घूम कर द्वार पर चिपकी हुई पूर्ण सज्जा सहित सतरह वर्ष की बालिका को देखा।

कठोर स्वर में आज्ञा हुई—"इधर आओ!" स्वर की कठोरता और अनपेक्षित स्वागत-निमन्त्रण सुनकर सावित्री निश्चय न कर सकी कि हिले अथवा नहीं।

आज्ञा की पुनरावृत्ति पर सावित्री धीरे धीरे पास आकर खड़ी हो गई। सावित्री ने पतले घूँघट में से इस बार पति के देव-तुल्य रूप को देखा। आनन्द से उसका हृदय भर उठा। पिता ने आते समय बिदा करते हुए कहा था—"बेटा बाहरी रूप को छोड़ कर भी एक अन्तर्निहित सौन्दर्य होता है। उसे स्वयं भी कभी न भूलना और दूसरों को भी न भूलने देना। भगवान् तुम्हारा मंगल करें।"

सब से पीछे भाभी ने चुपके चुपके कुछ मज़ाक के से लहजे में कहा था,—"बीबी, वर तो कामदेव मिल गया है, किन्तु उसका ध्यान बाहरी रूप से हटा कर भीतरी रूप की ओर मोड़ना। रानी, सौन्दर्य की चाह सभी को होती है, किन्तु सच्चे सौन्दर्य्य को पहचानता ही कौन है ?" यही भाभी घर और बाहर में सावित्री की एकमात्र हितचिन्तिक थीं। बहनों के उज्वल रूप की प्रशंसा के साथ माँ जब कभी अपनी इस बेटी के कलूटेपन की चर्चा करने लगतीं तो सावित्री को इन्हीं भाभी की एकमात्र गोद में आश्रय मिलता था। इन्हीं ने अपनी इस सबकी अप्रिय छोटी ननद को आज तक पाल-पोस कर बड़ा किया था।

सावित्री को सोचने-विचारने का अवसर न मिला। अनिल ने कहा "देखो, क्या नाम है तुम्हारा ? ख़ैर जो भी कुछ नाम हो, क्या तुम्हारे पिता को तुम्हारे जैसे ही रूप वाला कोई वर नहीं मिला था ?"—कह कर अनिल स्वयं बेहद लज्जित हो गया। सावित्री हिली तक नहीं।

अनिल ने फिर धीरे से कहा—"इस समय मुझे छेड़ना नहीं। मेरा चित्त कुछ अप्रसन्न है। कल फिर बात-चीत करेंगे।" तुरन्त उठकर अनिल फूलों से भरी हुई उस श्वेतोज्वल शय्या पर जाकर मुँह फेर कर लेट रहा।

हल्की नीली रोशनी का वलय मानो सावित्री पर हँस पड़ा।

सारे जीवन के अभिमान और तिरस्कार को पीकर वह आज पति-मन्दिर में आई थी। किन्तु वहाँ से यह प्राप्ति हुई। यही

उसकी चिर-साधना की पूँजी है जिसे लेकर उसे जीवन-यापन करना होगा। माँ कहा करती थी—"खत्री की इस काली लड़की को कौन पूछेगा ?"

बहिनें हँसती थीं—"माँग-चोटी से कुछ गोरी तो हो जाओगी नहीं।"

पर भाभी कहा करती थी—"रानी, हृदय का सौन्दर्य बड़ी चीज़ है।" किन्तु वह हृदय का सौन्दर्य तो उसे दिखाने का अवसर भी नहीं मिला।

साबित्री की बड़ी बड़ी आँखें, जिनका काजल उसने देखा भी नहीं जिसके लिये लगाया गया था, बरसने लगीं। सावित्री बार बार पुकार रही थी—"नाथ, इसी पूँजी को लेकर मुझे संसार चलाना होगा। हे परमेश्वर, इसी आश्रय के साथ मुझे संसार में जीना होगा। इन्हीं चरणों में पड़ कर मेरी गति होगी। हा, मेरी टूटी नौका, तुम्हें ही मुझे खींचखाँच कर किनारे की ओर ले जाना होगा।

यही उसकी सुहागरात थी। यहीं उसके नारी-जीवन का विकास होना था। यहीं उसे जीवन के द्वितीय चरण में पग धरना था। और फिर यही उसके जीवन की सबसे कठोर रात्रि थी। यही उसकी विश्व-परीक्षा का कठिन आरम्भ हुआ।

क्या ?

सावित्री के पिता प्रभुदयाल खन्ना एक अच्छे डाक्टर थे। पैतृक जायदाद तो गाँव में ही थी किन्तु शहर में अभ्यास करके काफ़ी आमदनी कर लेते थे। घर भरा-पूरा था। बचपन में कब उनका विवाह हुआ और कब अचानक पत्नी का देहान्त हो गया यह भी उन्हें याद नहीं, किन्तु दूसरे विवाह की अक्षर अक्षर याद है। उनकी पत्नी सुन्दरी, सुशीला और नए समाज की भक्त थीं। गृह-कार्य के अतिरिक्त गृहिणी को प्रचलित समाज-सोसायटी में जाना भी बहुत भला लगता था। कुछ पढ़ी-लिखी भी थीं। इनके दो लड़के और तीन लड़कियाँ थीं। सावित्री सबसे छोटी लड़की थी। बड़ी लड़की कमला का विवाह तो उसके आठवीं तक पहुँचते न पहुँचते ही हो गया था। विमला और सावित्री दोनों ने ही दसवीं तक शिक्षा प्राप्त की थी। विमला का विवाह भी हो चुका था। लड़के दोनों विवाहित थे। बड़े शान्तिस्वरूप एक फ़र्म में मैनेजर थे और छोटे ज्ञानस्वरूप पिता के साथ ही डाक्टरी का अभ्यास करते थे। बहुएँ घर सम्हालती थीं और

गृहिणी निश्चिन्त मन से महिला-सभा की मन्त्राणी का कार्य सम्भालती थीं। 'मिसेज़ खन्ना' सुनने में उन्हें बहुत ही भला जान पड़ता था। मिसेज़ खन्ना को एक बात जो बहुत खटकती थी वह थी सावित्री की असुन्दरता। वह स्वयं और दोनों लड़कियाँ दुधिया गुलाब सी स्वच्छ थीं। ललाट पर सजे लाल भाल-बिंदु से लेकर चप्पल में पड़े पैरों तक उनमें कुछ भी दोष न था। मिसेज़ खन्ना उन्हें देख कर प्रसन्न हो उठतीं—"यह देवी रूपिणी बालिकाएँ मेरी पुत्री हैं।" उन्हें कुछ सुन्दरता की सनक सी थी। दूसरी ओर सावित्री का रंग साँवला था। बचपन में एक बार भाई ने जब ढकेल दिया था तो चोट लगने से माथे के बाईं ओर अभी तक निशान पड़ा हुआ था। नीचे का होंठ अपेक्षाकृत कुछ बड़ा होने से भद्दा मालूम होता था। आँखों में बाल्यकाल ही से अनादर मिलने से एक दीनता की सी ध्वनि थी। यही सब कुछ मिलकर उसे दर्शनीय नहीं बनने देता था।

माँ का तिरस्कार और भाभी का प्यार पाकर ही इस बालिका ने सोलह लम्बे वर्ष इस घर में बिता दिये थे। भाभी सदा ही कहा करती थी—"सावित्री, मुख का सौन्दर्य दर्शनीय है किन्तु मन का सौन्दर्य अनुभूति की वस्तु है। दर्शनीय तो सब ही पा लेते हैं, किन्तु जो दिखाई न दे उसे पाने वाला ही तो ज्ञानी है।"

माँ की देखादेखी बहिनों का भी तिरस्कार बढ़ गया था। किन्तु सावित्री इन सब अत्याचारों को सह सह कर उनकी आदी

हो गई थी। वह सोचती थी कि इतनी बड़ी सृष्टि में भगवान ने जब चारों ओर सुन्दरता का इतना विशाल साम्राज्य बखेर दिया है तो भला मुझे ही क्यों वञ्चित रक्खा? किन्तु उत्तर न मिलता था। माँ भी जब तब कहा करतीं, "इस काली लड़की को कौन लेगा?" सावित्री भी सोचने लगी थी कि मुझे वरने वाला वास्तव में देवता होगा। किन्तु भाभी हँस कर कहतीं "सावित्री रूप के तेज से कहीं बढ़ कर मन का तेज है। वह ढकने से भी ढका नहीं जाता।" किन्तु सुन्दर भाभी की यह बात सावित्री के बाहर ही टकरा कर वापिस लौट आती; अन्तर्तम तक पहुँच ही नहीं पाती।

इसी तरह दिन बीतते गये। घर में अनादर और स्कूल में उपेक्षा के बीच सावित्री के दिन बीतते गये। किन्तु बालिका के शुष्क जीवन को एक ही आशा बाँधे थी और वह थी जीवन के एक-मात्र साथी की ओर से। उसे पूरा विश्वास था कि संसार भले ही मेरी उपेक्षा करे, किन्तु अग्नि को साक्षी करके जो मेरा पाणि ग्रहण करेंगे वह अवश्य मुझे समझ सकेंगे। जिस दिन उसने पति के देव-तुल्य रूप को देखा तो वह स्वयं ही हँस पड़ी—"भगवान्, मुझे क्या ज्ञात था कि तुम इतने बड़े खिलाड़ी हो। मेरी कमी उनमें पूरी करके तुमने हमें पूर्ण कर दिया।

किन्तु इतनी बड़ी आशा एक ही कठोर ठोकर खाकर बह पड़ी। सावित्री गुमसुम हो गई। "यही वह चिर-प्रिय-आशा थी जिस पर मैं जी रही थी। हे भगवान्, यह क्या किया! मेरा

अन्तिम सूत्र भी क्षय कर दिया। प्रभु !"

सावित्री एक ही रात्रि में चपल बाला से पक्की प्रौढ़ा गृहिणी बन बैठी। सूर्योदय ने इस बार एक पूर्ण प्रौढ़ा गृहिणी को देखा। सीता को बहू का यह परिवर्तन ज़रा भी न रुचा। अनिला ने भी भाभी के गाल पर एक चपत लगाते हुए कहा—"क्यों क्या रात में यही निश्चय हुआ है कि आप एक ही दिन में सारी गृहस्थी के काम सम्भाल लें, फिर तो भाई-बंधुओं को तुम भइया के कमरे में भी न घुसने दोगी। क्यों भई, कालेज भी जाने दोगी या तुम्हीं पढ़ाओगी भी ?"—अनिल की पुस्तकों को झाड़ती हुई सावित्री से अनिला कह रही थी। यकायक सावित्री के सफ़ेद पड़े हुए मुख पर दृष्टि पड़ते ही अनिला रुक गई। यह क्या ? यहाँ लज्जा की लाली भी नहीं है और सन्तोष की झलक भी नहीं। तो क्या ? तो क्या ? अनिला सोच न सकी। भाई का कवित्व जीवित होकर उसके सम्मुख नाचने लगा। सावित्री का हाथ रुक गया था। काली लड़की के हृदय के भीतर कोलाहल मच रहा था, फिर भी वह समुद्र की तरह शान्त थी। यही कठिन शिक्षा तो भारतीय लड़कियों को मिलती है न ? बच्चे को अनिला की गोद से लेकर सावित्री ने इसी बहाने उस भयंकर अग्नि को शान्त करना चाहा जो उसके हृदय के भीतर जल रही थी। अनिला उस शान्त रमणी के मुख की ओर एक मिनिट तक स्थिर दृष्टि से देखती हुई कहने लगी—"अरी, तुझे हुआ क्या है, कुछ बता तो सही ? मैं तो तेरी बहिन हूँ न ?"

ओह, पर क्या बहिन होने पर भी नारी इतनी बड़ी लज्जा की बात अपने मुख से कह सकेगी ? ग्लानि से उसका हृदय एक क्षण भर में सूख कर काठ न हो जायगा ? स्वामी द्वारा तिरस्कार पाकर नारी के लिये फिर जग में क्या रह जायगा ? यह बात भाभी के निकट शिक्षा पाई हुई सावित्री से अधिक और कौन जान सकेगा ? और फिर उसी तिरस्कार का वर्णन वह स्वयं, अपने मुख से... अरे...इससे अधिक अन्धेर की बात सम्भवतः कोई हो ही नहीं सकती।

शान्त मन से सावित्री ने प्रसंग बदल देना चाहा, पर अनिला बैठी न रह सकी। उठकर चली गई। तीसरे ही दिन पति पुत्र के संसार में जाकर सुखी अनिला एक प्रकार से दुःखिनी भाभी की बात भूल ही गई। सीता का संसार फिर बेटे और बहू को लेकर चलने लगा।

वह

(iii) Vah

"किसी दिन भी जिसे वह कुछ दे नहीं सका उससे लेते जाना ही कहाँ तक उचित है ? किन्तु मैं तो उससे कुछ भी नहीं माँगता। चाहता भी नहीं, इच्छा भी नहीं करता। अयाचित रूप से ही वह बिना माँगे ही देती जाती है। वह भारतीय नारी है न ! किन्तु यह भारतीय नारी की दीनता है। यह क्या गुण है ? चुपचाप कठपुतली की तरह सहते जाना ही तो शोभा नहीं देता। किन्तु नहीं, नहीं; फिर भी मैं उसका अधिकार अन्य को न दे सकूँगा। कभी भी नहीं, कदापि नहीं। यदि वह नहीं पा सकती तो न सही, उसकी, उसके अर्थ दी हुई वस्तु, अछूती ही रहेगी।" सुनसान अकेली उज्वल चाँदनी से भरी हुई छत से, दूध से, श्वेत विस्तर पर पड़ा अनिल सोच रहा था। "नारी-अधिकार" पर टाउन हाल में आज एक व्याख्यान था। युवक-सभा के मन्त्री के नाते अनिल को भी विषय-प्रवेश कराना पड़ा था। व्याख्याता की तीखी व्यंगोक्तियाँ अभी तक अनिल के मस्तिष्क में जागृत थीं। कभी किसी दिन भी अनिल ने सावित्री को प्यार नहीं किया

था। किन्तु उसकी सारी सेवाएँ स्वीकार करता रहा था। विवाह हो ही चुका है, व्यर्थ में वह माँ के कोमल हृदय को चोट पहुँचाना नहीं चाहता था। अतः यावज्जीवन इसी प्रकार निस्सार गृहस्थी में ही रह कर जीवन बिता देने का ही उसका निश्चय था। उसे अपने चरित्र पर अभिमान था। और थी सावित्री पर दया। विधि की कैसी विडम्बना है ? नारी पति के उन्मुक्त प्रेम के बदले पाये केवल दान, दया का तुच्छ दान। सावित्री किसी दिन भी उसे प्रसन्न मन से ग्रहण न कर सकी। पति की कठोरता उसे ग्राह्य थी। पति की उपेक्षा भी वह सह जाती थी, किन्तु कहाँ, सुहाग के पश्चात् तो पति का व्यवहार उसके प्रति सदा ही कोमल रहा। यही उनकी दया थी जिससे सावित्री का धीरज छूट जाता था। काम बिगड़ जाने पर कभी भी उसे पति से कठोर वचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, वरन 'रहने दो' ही सुनने को मलता था।

उस दिन शरबत बनाना सीखने आई हुई किशोरी को जब देर हो गई तो उसने बहुत ही घबरा कर कहा—"बस बहिन! फालसे का शरबत फिर कभी सीखूँगी। अब जाती हूँ।"

"अरी किशोरी, अभी तो सन्ध्या ही हुई है, सीख जा। चली जाना जल्दी क्या है ? घर कौन मील भर है।" बड़े प्यार से सीता ने आटे में सने हुए हाथ से एक लट माथे पर से बाँई ओर हटाते हुए कहा।

आँगन में से ही किशोरी ने कहा—"मौसी, फिर आऊँगी। अम्मा गुस्सा होयगी।"

दबी ज़ुबान से धीमे से सावित्री ने कहा—"कौन गुस्सा होगा किशोरी ?" किशोरी का मुख आनन्द से खिल उठा, पर तुरन्त ही लज्जा से लाल होकर बोली—"बहिन, बहुत नाराज़ हो जाते हैं, फिर घंटों मनाना पड़ता है। बोलते ही नहीं। घर आ गये होंगे तो आज रात मनाने में ही बीतेगी।"

"हूँ !" कह कर सावित्री चुपचाप बरतन को पानी में हिला कर शरबत ठंडा करने लगी। क्या उत्तर दे, सो वह अभागिन सोच भी न सकी। अप्रसन्नता का डर उसे इस संसार में किसी का भी नहीं। उससे नाराज़ होने वाला कोई भी नहीं, यही सत्य उसके हृदय को बुरी तरह मथने लगा। उसका जीवन रिक्त है, नीरस है। वहाँ न प्यार है और न क्रोध। एक मात्र, केवल एक मात्र नीरवता, उदासीनता और है दया। यही उसके जीवन की कहानी है। सावित्री उस दिन चुपचाप कमरे में जाकर घंटों रोती रही। सेवा और स्वभाव से वह सास के मन को तो पहले ही जीत चुकी थी, किन्तु अब सीता भी सावित्री पर कुछ कुछ अप्रसन्न रहती थी। वह भी कैसी स्त्री और कैसी उसकी लज्जा ? विवाह के बाद से अनिल घर में ही बहुत कम रहता है। अधिकांश समय कालेज या सभाओं में ही बिता देता है। सीता के टोकने पर आरम्भ में तो कह देता था, "माँ, यह एम. ए. का अन्तिम वर्ष है न ? पढ़ाई का ज़ोर ज्यादा है।" माँ भी विश्वास कर लेती थी, किन्तु अब धीरे धीरे वह भी बहू से विरक्त होने लगी है। "ऐसी भी क्या लज्जा कि पति का ध्यान भी न रक्खे।"

कभी वक्त-बेवक्त अनिल के घर आने पर गृह-स्वामिनी बड़े प्यार से करछुल कढ़ाई में चलाती हुई बहू का हाथ पकड़ कर कहती—"रहने दे, बहू, भुजिया मैं ठीक करती हूँ। तू तनिक अनिल को पानी-आनी तो दे आ। जा, ऊपर कमरे में गया है। अरी तू धोती तो ज़रा साफ़ पहन आ। देख कैसे गन्दे कपड़े हैं।" बिना प्रतिवाद किये सावित्री करछुल सास के हाथ में थमा कर चुपचाप कुछ जल-पान की सामग्री और पानी का गिलास लेकर ऊपर चली जाती और तुरन्त ही रखकर आ जाती। सीता को यह बिलकुल भी भला न लगता। "भला, खो यह तो पूछे कि बेवक्त कैसे आ गये। दुःख-कष्ट हो तो ज़रा बैठ जाय। और मैं क्या रोकती हूँ? कोई भाभी तो है नहीं जो लड़का जी की बात कहे? बहू भी ऐसी है कि पास फटकते डरती है। अरे भई, क्या खा जायगा?"

और झल्ला कर कहतीं—"रहने दो, यह सब मैं आप ही कर लूँगी। ज़रा लड़के के पास खड़े होकर देखा नहीं गया कि कुछ चाहिये ही हो।" सास की मनोवृत्ति पहचान कर सावित्री चुपचाप चली जाती, किन्तु कौन जानता है कि सीढ़ियों में ही खड़ी रहती या ऊपर जा भी पाती। विचारी सीता स्वयं बहुत सुन्दर न थी। पति का अतुलित प्यार भी उसने पाया था। उसे क्या मालूम कि बहू को ऊपर जाकर यही सुनना पड़ता है, "बस अब कुछ नहीं चाहिये। अच्छा, जाओ। जाओ कुछ काम करो, माँ अकेली काम कर रही है।"

माता-तुल्य स्नेहमयी सास ! इतनी बड़ी लज्जा, अनादर और ठुकराने की बात भला सास कैसे जान पाती ?

दुःख तथा अभिमान से सावित्री का हृदय टुकड़े टुकड़े हो जाता।

"भाभी कहती थीं हृदय का सौन्दर्य्य मुख के सौन्दर्य्य से कहीं महान् है। किन्तु कहाँ ? उसका पारखी संसार में है ही कहाँ ? मैंने उनकी समस्त उपेक्षा को अञ्चल में छुपा कर भी क्या पाया ? एक अतृप्त तृष्णा, एक कठोर निराशा। महीना !"

जानबूझ कर आज सावित्री ने काम में कुछ देर कर दी। किसी को मधुर दण्ड देने के लिये नहीं, नारी के समुचित अभिमान से भी नहीं, केवल निराशा से, केवल दुःख से। 'मेरे लिये बैठे प्रतीक्षा ही कौन कर रहे हैं ?' यही उसका भाव था। आँखों से बहनेवाली अभागिन नदी थमती ही नहीं थी, और इन बहने वाले नालों को लेकर, अपनी समस्त कमज़ोरी को सशरीर लेकर, वह उनके सामने कंगालिनी की तरह कैसे जा खड़ी होगी? उसके आँसुओं पर दया तो वह अवश्य करेंगे, शायद सहानुभूति के दो-चार शब्द भी कहें, किन्तु इससे अधिक मूल्य उसके आँसुओं का उनके निकट था ही नहीं। अपने तृप्त होठों को उसकी गीली पलकों पर चिपका कर आँसू पोंछने वाला वहाँ था ही कौन ? फिर भला वह उन्हें लेकर कैसे जाती ? आँखें गुढ़हल के फूल की तरह लाल हो रही थीं। उसे सोने की इच्छा न थी।

उधर विवाह के पश्चात् आज पहली ही रात थी जब अनिल

अपनी प्रिय पात्री नहीं वरन् शास्त्रोक्त पत्नी की प्रतीक्षा कर रहा था। आज उसके हृदय में कर्तव्य-बुद्धि जाग्रत हो रही थी, किन्तु·····

घनी प्रतीक्षा के पश्चात् सावित्री की पद-ध्वनि सुनाई दी। सावित्री निश्चिन्त मन से चढ़ रही थी। उसे पूरा विश्वास था कि अनिल सो गया होगा। भारी मन से सावित्री ने एक गिलास पानी सुराही से ढाल कर पिया और चुपचाप चारपाई पर पड़ रही।

सोच-समझ कर सुन्दर चाँदनी से नहाई हुई असुन्दरी पत्नी की ओर देखकर कृपापूर्ण स्वर से अनिल—कवि अनिल—ने कहा—"सावित्री, इधर आओ।"

इस कृपापूर्ण, आज्ञाभरे स्वर ने सावित्री के सिर से पैर तक ज्वालामुखी भभका दिया। जिसे प्रेम करने की आकांक्षा नहीं है उसे भला आज्ञा देने का ही क्या अधिकार है? उसे कृपा करने की भी अभिलाषा क्यों हो? मैं तुम्हारी पत्नी हूँ। मुझे प्रेम—मुक्त-हस्त प्रेम—का दान चाहिये। वही मेरा अधिकार है। दया मैं न लूँगी। उसके पात्र तुम्हें संसार में बहुत मिलेंगे। मुझे तुम्हारी कृपा नहीं चाहिये, नहीं चाहिये, कभी नहीं चाहिये। एक, दस, हजार, लाख, करोड़ बार नहीं, नहीं, नहीं। माननी नारी का मान आज उसके हृदय की समस्त सहनशीलता, दीनता और नम्रता को कुचल कर जाग उठा। सब कुछ होने पर भी नारी, नारीत्व को सहज ही न छोड़ सकेगी।

और भी अधिक मीठे स्वर में अनिल ने कहा—"आओ सावित्री, एक बात सुनो।"

उत्तरोत्तर बढ़ती हुई दया की ध्वनि सावित्री के कानों में लाखों हथौड़ों की चोट पहुँचा रही थी।

"क्या इनका मुझ पर अधिकार नहीं, कोई भी दावा नहीं? क्या यह मुझे नाराज़गी से यह नहीं कह सकते कि सावित्री आज तुझे देर क्यों हो गई?"—कल्पना ने सावित्री को निस्पन्द कर दिया, निश्चेष्ट कर दिया।

अनिल ने सावित्री के कन्धे पर धीरे से धक्का देकर कहा,—"सावित्री, एक बात सुनो।" मान अभी पिघला न था, किन्तु पिघलने लगा था। एक आधी चोट की ही कसर थी। सावित्री की इच्छा हुई कि श्वेत युगल चरणों को छाती में एकदम चिपटा कर रो उठे, "नाथ, मैं इस योग्य नहीं, कदापि नहीं कि तुम्हारा प्रेम प्राप्त कर सकूँ। किन्तु दोष उस भगवान का है जिसने असुन्दर शरीर देकर भी मेरे हृदय में नारी-हृदय की समस्त आकांक्षाएँ पूर्ण रूप से भर दीं। मैं दुर्बल नारी हूँ। स्वामी! मान, अभिमान, आदर, निरादर सभी कुछ तुम्हारे ही चरणों में सौंपने में ही मेरी गति है। किन्तु मेरे देवता, मेरा इन चरणों पर अर्घ्य चढ़ाने का मेरा अधिकार न छीनो। इसी में मेरी गति है। यही मेरा संसार में जीवन धारण करने का एक मात्र दावा है। इस एकमात्र दावे को मेरे प्रभु रहने ही दो।" जीवन में इतना आनन्द-उपभोग सावित्री ने कभी नहीं किया था। उसका मुरझाया हुआ हृदय खिल उठा। किन्तु यह क्या? अभागिन ने और अधिक आनन्द की अभिलाषा की। मुख से निकल पड़ा,—"रहने दो, मुझे नींद आ रही है।

अभागिन क्या जानती थी कि उसके शब्दों का अर्थ समझने के योग्य भावना कर्तव्य-ज्ञान वाले पति में कहाँ से आयेगी।

हसकर अनिल ने कहा—"अच्छा, सोओ।" मालूम नहीं यह तंग न करने की अभिलाषा से कहा गया अथवा दण्ड देने के लिये। पर निश्चय ही सावित्री उस रात सो न सकी। उसका इतना सा अभिमान भी उसके देवता न सह सके। रात भर उसकी आँखों से सावन-भादों की झड़ी लगी रही। अनिल सो गया।

लाड़

(IV) Laad.

"इस तरह जुल्म करोगी तो मालूम पड़ता है, घर छोड़कर ही भागना पड़ेगा।"

"सो क्यों ? चुन्नी !"

"और क्या ? अब कोई दो-चार दिन की मेहमान तो हूँ नहीं। भला मेरे लिये आटा लिये दो बजे तक बैठी रहोगी ? अब कालेज से तो पीरियड समाप्त होने पर ही आना होगा।"

"तो क्या करूँ ? तुम्हें खाने को न दूँ क्या ?"

"न क्यों दो ? मेरे लिये, बनाकर रख न दिया करो ?"

"वाह, सो कैसे होगा ? मुझे ठहरना तो पड़ेगा। फिर आटा ही क्यों न पड़ा रहे ?"

तब तक रोटी तवे से उतर कर घई में सिक भी चुकी थी। सावित्री ने जल्दी से चुन्नी की थाली में रोटी डाली। चुन्नी बोली—

"सो क्यों ? तुम खा-पी कर आराम किया करो। मैं आकर खा लिया करूँगी।"

"वाह, वाह, ऐसा भी कहीं होता है, चुन्नी ? मैं सबसे पहले खा-पीकर बैठ जाऊँ ?"

व्यवहार-कुशल गृहिणी ने अपरिपक्व ज्ञानवाली लड़की के भोले मुख की ओर देखते हुए कहा।

"तो क्या तुम्हें सबके बाद ही खाना होता है ? ऐसा क्यों?"

"ऐसा न होने पर मेरा मन नहीं मानता जो ?" दूसरी रोटी भी थाली में पहुँच चुकी थी, पर चुन्नी की अभी पहली रोटी भी पड़ी हुई थी।

"अरे, अभी पहली भी ख़तम नहीं की। कितनी अल्हड़ है री तू ? खाना भूल गई क्या ? अब गोदी में बिठा कर खिलाऊँ?"—हँसती हुई सावित्री कहने लगी।

चुन्नी को शायद मज़ाक़ बहुत अच्छा लगा। ताली पीट पीट कर कहने लगी।

"वाह भई, फिर तो भला क्या कहने हैं ? फिर यही करो। आऊँ तुम्हारी गोदी में ?"

इस अल्हड़ लड़की की चंचलता-पूर्ण वाणी ने सावित्री को भोले बचपन की याद में इतना मस्त कर दिया कि कब सिर का पल्ला खिसक कर कन्धों पर जा पड़ा उसे मालूम ही न हुआ। आँच की तेज़ी से सिन्दुरिया बना हुआ मुख हास्य से भर उठा।

सहज सरल आँखें, जिन पर—जिनके सौन्दर्य पर—कभी किसी की दृष्टि न पड़ी थी, खिल उठीं। इसी बीच न जाने कब बेमतलब हँसी के फव्वारे का मतलब समझने अनिल रसोई की चौखट पर आ खड़ा हुआ। इसे दोनों में से किसी ने भी न देखा।

"अब हँस हँस कर पागल ही हो जाओगी क्या, चुन्नी ?" अनिल ने मुस्कराते हुए कहा।

"कहाँ ? मैं तो भला बोलती भी नहीं हूँ। बहिन को तो कुछ कहते नहीं। जानते हो न जहाँ नाराज़ हुई, रोटी भी न मिलेगी। मैं बिचारी भला क्या कर लूँगी ?"

कृत्रिम क्रोध दिखाती हुई चुन्नी बोली।

पहली ही बार विवाहित जीवन में अनिल ने सरल दृष्टि से सावित्री की ओर देखा। तब तक सावित्री पल्ला ठीक कर चुकी थी। अब वह नीची दृष्टि किये रोटी बेल रही थी।

अनिल को जान पड़ा कि यह अल्हड़ लड़की हमें अधिकाधिक निकट ला देगी। विवाहित जीवन की इस एकाकी शून्यता से वह ऊब चुका था ? किन्तु अब तक सावित्री उसके पूर्वाभास पर ही बच-बच कर चल रही थी। उसे न कोई परिवर्तन की ही आवश्यकता अनिल की दृष्टि में प्रतीत होती थी और न झुकने की। स्वयं झुक कर अपनाने में, शायद काली लड़की के प्रति प्रेम दिखाने में अनिल के पुरुषत्व का अपमान होता था। फिर भी यह निकट आने का आभास अनिल को भला लगा।

किन्तु बिचारी चुन्नी जान भी न सकी कि उसने अनजाने में ही सावित्री के सबसे कोमल स्थान पर चोट कर दी है। सावित्री तिलमिला उठी। अभी अनिल चौखट पर ही खड़ा था।

आज उसे सावित्री के हाथ की बनी हुई गोल गोल फूली हुई रोटी खाते हुए देखने का लोभ हो आया।

चुन्नी ने चपलता से कहा—"अब क्या हमें नज़र लगाओगे, अनिल भैया ? मैं तो पहले ही इतनी दुबली हूँ।"

"अरी, तो मैं कब कहता हूँ कि तू मोटी है?"—कहता हुआ अनिल चला गया।

सावित्री ने इतनी देर बाद अञ्चल उठा कर गालों तक बहते हुए आँसू पोंछ डाले।

"बहिन, एक लकड़ी निकाल न लो। तुम्हें आग बहुत लग रही है।"

सहानुभूति से चुन्नी ने कहा।

सावित्री की सहन-शक्ति कभी की चुक गई थी। झिड़क कर बोली—"चुन्नी, चुपचाप खालो। दूसरे को भी निबटना है।"

चुन्नी इस एक मात्र सेवा में लगी हुई नारी की यह शिकायत सुन कर आश्चर्यचकित रह गई, किन्तु तुरन्त ही घंटे ने तीन बजाये। चुन्नी झटपट थाली की रोटी निबटा कर खड़ी हो गई। हाथ धोकर बड़े प्रेम से कहने लगी—"अब तुम उठ कर खालो, मैं बनाये देती हूँ।"

सावित्री तब तक सम्हल चुकी थी। आँसू पी चुकी थी। हँस कर बोली—"तू जा, मैं अभी आती हूँ। महरा को ज़रा आवाज़ देती जा।"

"तुम खाना तो खा लो।"

"मैं खाती हूँ री, तू महरा को भेज।"

"अच्छा।" कह कर चुन्नी मौसी के पास चली गई।

बात यों थी कि सीता की एक बड़े दूर के रिश्ते की कोई बहिन लगती थी। रिश्ता तो शायद ही कहीं निकलता हो, किन्तु दोनों में प्रेम अवश्य था। विवाह भी दोनों का लगभग साथ ही साथ हुआ था। सीता के विधवा होने पर भी वह सन्तप्ता नारी, जो कि सीता से तीन चार वर्ष बाद ही स्वयं भी विधवा हो गई, सीता के पास सान्त्वना देने आकर दो तीन मास बिता गई थी। चुन्नी के पिता ने वृद्धावस्था में विवाह किया था। परिवार में एक भाई को छोड़ और कोई भी न था। मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए, भाई के हाथ में एक विधवा, बालिका और काफ़ी धन छोड़ कर वृद्ध चल बसे। पिता की इच्छा बालिका को सुशिक्षित करने की थी। पाश्चात्य शिक्षा के प्रति उनका विशेष प्रेम था। किसी समय इसी बच्ची के साथ अनिल के विवाहकी बात थी किन्तु बालिका के पिता लड़की को बिना बी. ए. करवाये विवाह की बात ही न करना चाहते थे। वह कहते थे, "मेरा तो बेटा भी यही है और बेटी भी, मैं इसे अवश्य पढ़ाऊँगा। फिर धन होने पर कहीं भी अच्छा लड़का मिल जायगा।"

पति की मृत्यु के पश्चात् विधवा भी दो वर्ष से अधिक न जी सकी। चुन्नी के चाचा भले आदमी थे। गाज़ियाबाद में पढ़ाने की उचित व्यवस्था न देख कर उन्होंने यही ठीक समझा कि जिन्होंने चुन्नी की माँ की मृत्यु पर आकर उसकी माता के सम्मुख ही लड़की का भार लिया था वही चुन्नी को पास रख कर पढ़ाने का भी भार ले। यह प्रस्ताव था भी सीता का ही। उसकी

इच्छा भी थी कि बहिन का भार भी उतार दें और फिर बहू को भी एक सहबोली मिल जाय। इसीलिये पिछले चार-पाँच मास से चुन्नी यहीं रह कर पढ़ती थी। चुन्नी ने इस घर में आते ही सावित्री से बहिन का नाता जोड़ लिया था, यहाँ तक कि कभी कभी हँसी में अनिल को जीजा भी कह देती थी। इस लापरवाह लाड़ली लड़की पर घर भर में सबका स्नेह था। सीता की तो वह प्राण ही बन गई थी, पर सबसे अधिक स्नेह उसे सावित्री से हो गया था।

चुन्नी का नाम था नलिनी, पर उसके पिता उसे चुन्नी ही कहा करते थे, इसीलिये सिवाय कालेज वालों के और सब परिचित गण उसे चुन्नी ही कहते थे। कभी कभी तो शैतानी से सावित्री उसकी कापी पर "नलिनी सेठ" की जगह काटकर चुन्नी लिख देती थी। इस पर चुन्नी बहुत बिगड़ती थी। इसी चहल-पहल में दिन बीत रहे थे। इस लड़की के आगमन ने परिवार में मानों प्राण ही डाल दिये थे। इसी से सावित्री अब प्रसन्न भी रहने लगी थी। अनिल भी कभी कभी उससे प्रसन्न मुख से—निश्चिन्त मन से—बोलने चालने लगा था। इसी से पिछली बार जब अनिला घर आई तो उसने दूसरे दिन चलते समय दोनों हाथ पकड़कर सावित्री से कहा था—"भाभी, तुम गजब की सहनशील हो। रिश्ते में तुमसे छोटी होते हुए भी आशीर्वाद देती हूँ कि भगवान तुम्हारा सब तरह मंगल करे। तुम्हें अनन्त सुख दे। आज कल तुम कुछ प्रसन्न भी दीखती हो। देखो, मुझे ठीक ठीक बताओ, भइया तुम्हें प्यार करते हैं अथवा नहीं?"

कितनी गुह्य बात थी ? अन्य रमणियों, सौभाग्यवती नारियों के लिये गौरवपूर्ण भी हो सकती है। किन्तु सावित्री ! उसके लिये तो यह सबसे अधिक लज्जा की बात थी न ? यह तो वह अपनी सब से अधिक मंगलाकांक्षी से भी न कह सकेगी। मुँह ही न खुलेगा।

सावित्री को चुप देख कर अनिला ने कहा—"अच्छा नहीं कह सको तो न ही कहो। नहीं जानती, यह लज्जा है अथवा वेदना, फिर भी भाभी, यह अच्छी तरह समझ रखना कि अपनी थाती अरक्षित होने से ही उसे छोड़ देना नहीं होगा। उपभोग न कर सकने पर भी उसकी रक्षा अवश्य करनी होगी। फिर किसी न किसी दिन तो मिलेगी ही। अपनी जो हुई। भगवान् तुम्हारे हिस्से का सुख तुम्हें देने में कृपणता कभी न करेंगे। केवल अवसर आने दो। जगत-पिता तुम्हारा कल्याण करें।"

बिना कुछ बोले-चाले ही सावित्री ने सब कुछ ग्रहण कर लिया। अनिला के चले जाने के बाद सावित्री ने उसी स्थान पर जहाँ अनिला खड़ी थी लेटकर सम्पूर्ण हृदय का दुःख आँखों से बहा डाला—"मेरी बहिन, मेरी शुभाकांक्षी, तुम्हें क्या मालूम कि कोई भी नारी इतनी अधिक घनी अपमान की बात मुँह खोल कर किसीसे भी नहीं कह पायगी। शायद भगवान से भी नहीं कह पायेगी। शायद भगवान् से ही क्या, स्वयं अपने आप से भी नहीं।" किन्तु बिचारी सावित्री को स्वयं अपने को भी धोखा दे रखने का अवकाश ही नहीं मिला। मिलही नहीं सका। "भगवान्, तुम्हें पति-पुत्र के बीच सदा सुखी रक्खें, तुम इस अभागिन की चिंता में पड़

कर कभी अपने स्वर्ग का क्षण भर का भी आनन्द नष्ट न करो, यही मेरा, तुम्हारी भाभी का, आशीर्वाद है। संसार भर में सब की दया, सहानुभूति, आशीर्वाद और घृणा भी मैं आञ्चल पसार कर ले सकूँगी, लूँगी, किन्तु प्रेम तो केवल एक के ही निकट चाहती हूँ, उससे इन सबमें से कुछ भी ग्रहण न कर सकूँगी, किन्तु उसके ही पास तो वह दे सकने की सुविधा नहीं है। अभागिन कुरूप नारी! वह देगा तो दया, कृपा, सहानुभूति और सो ही यह कङ्कालिनी आवश्यकता पड़ने पर अन्य सारे विश्व से ले सकेगी, केवल मात्र उससे नहीं, उससे नहीं, कभी नहीं, कदापि नहीं।" सावित्री का अञ्चल कभी का गीला हो गया।

"अरी बहिन, कहाँ खो गई हो?" चुन्नी की चुहलपूर्ण आवाज़ ने सावित्री को बाह्य जगत् का भान कराया? आँखों के आँसू पोछ कर मुँह धो, हृदय पर पत्थर धर कर सावित्री को इस लड़की के पास बैठना ही होगा। यह तो किसी प्रकार भी छोड़ेगी नहीं। अन्यथा अनिल के पास ही इस रोने-धोने की शिकायत कर बैठेगी, जब कि फिर सावित्री के लिये डूब मरने को भी कोई जगह शेष न रहेगी। उनके सम्मुख हृदय की यह दुर्बलता! छिः!

(V) Purush

पुरुष

सृष्टि के आदि में पुरुष की सृष्टि करते हुए शायद ब्रह्मा ने आपादमस्तक उसमें एक ही बात भर दी है और वह है अवलम्ब बनने की चाह। पुरुष में शक्ति होती है और वह चाहता है उसका उपयोग। नारी यदि दुर्बल हो अवलम्ब का आश्रय ढूँढ़ती हो तो पुरुष उसे स्वभावतः अपना लेता है, किन्तु दृढ़तापूर्वक खड़ी रहने वाली साहसी नारी से वह भय खाता है। सावित्री ने बाल्यकाल से ही अपने पैरों पर खड़ा होना सीखा था। माँ की झिड़की और बहिनों के तिरस्कार में ही उसके जीवन का प्रभात आरम्भ हुआ था। वह वृक्ष बन गई थी। अतः लता निर्भयता-पूर्वक उसका सहारा ले सकती थी। किन्तु लता बनकर उसे आश्रय की आवश्यकता न थी।

चुन्नी ने बाल्यकाल से ही वृद्धावस्था की सन्तान होने के नाते पिता का भरपूर लाड़ और फिर एक मात्र सन्तान होने के दावे से विधवा माँ का विमुक्त प्यार पाया था। कभी किसी दिन भी उसे अपना मार्ग ढूँढ़ना नहीं पड़ा था। किसी दिन पानी का गिलास भी उसने उठा कर नहीं पिया था। आरम्भ से ही धनी पिता की सुन्दरी पुत्री होने से तथा पढ़ने की विलक्षण कुशाग्र बुद्धि पा जाने

से अध्यापिकाएँ और सहपाठिनी छात्राएँ उस पर विशेष प्रेम रखती थीं। स्कूल की कोई सभा-समिति नलिनी सेठ की कविताओं के बिना न चलती थी। कोई भी ड्रामा नलिनी के बिना न हो पाता था। कालेज में भी सैकेन्ड ईयर तक आते आते नलिनी डिबेटिङ्ग सोसायटी की मन्त्राणी तथा ड्रामेटिक क्लब की प्रधाना हो गई। पिछले नाटक खेलने पर तो स्वयं प्रिन्सीपल ने भी उसके सफल अभिनय पर पदक प्रदान किया था। बड़ी हँसमुख और चंचल है। अल्हड़ इतनी कि उसे प्रायः अपनी पुस्तकों की भी याद नहीं रहती। कोई पुस्तक कामनरूम में कभी छोड़ आती है तो क्लासरूम में ढूँढ़ती फिरती है।

चुहलबाज़ी और व्यंगोक्ति में तो शायद कोई भी उसके सामने नहीं ठहरता। फिर भी सदा एक न एक विषय में फर्स्ट और दूसरों में सैकेन्ड या थर्ड आती है।

कालेज के उत्सवों में कार्यकर्ताओं में शायद ही कभी नलिनी सेठ पीछे रह जाती हो। गम्भीर व्याख्यान से लेकर मूर्ख-सम्मेलन तक में प्रथम भाग मुख्य विषय में नलिनी का ही होता है। अध्यापिकाओं के सम्मान और छात्राओं से सहानुभूति की कमी भी नलिनी में नहीं। फिर भी दाख़िले के दिनों में फर्स्ट ईयर के फूल बनाने वालों की अगुआ भी वही थी। इकनोमिक्स की कक्षा में विचित्र किन्तु बुद्धिमत्तापूर्ण प्रश्न करके मिसेज़ असलम को तंग करना भी नलिनी का ही काम था। मतलब यह कि कोई भी क्षेत्र ऐसा न था जहाँ नलिनी सेठ के बिना कालेज जीवन में काम चल जाता।

सब को सदा नलिनी को हाथों पर ही रखना पड़ता था। शायद इसीलिये अपने जीवन में नलिनी परमुखापेक्षी हो गई।

उन दिनों सीता तीर्थ-यात्रा करने गई हुई थी। सावित्री बुखार में पड़ी हुई थी।

गर्मी के दिन कालेज में किसी सभा से वाहवाही लूट कर जब नलिनी पाँच बजे घर पहुँची तो प्यास से कण्ठ जल रहा था।

'बहिन, बहिन' से घर गुँजाती हुई जब नलिनी पहुँची तो सावित्री दिखाई न दी। कमरे में जाने पर देखा सावित्री अंगारे सी आँखें लिये पड़ी है। घबरा कर नलिनी ने माथे पर हाथ रक्खा तो माथा जल रहा था। कालिज की अपरिपक्व अनुभववाली चुन्नी समझ ही न सकी कि क्या करना होगा। सावित्री ने आँखें खोल कर कष्ट से कहा—"चुन्नी, पानी-वानी पी ले। सिरहाने देख मेज़ पर चीनी, गिलास, नीबू सब कुछ रक्खा है। सुराही से पानी ले ले।"

"तुम्हें हो क्या गया, बहिन?"

"पहले तू अपनी सम्हाल कर। प्यास लगी होगी।" सचमुच गले में काँटे से चुभ रहे थे। सावित्री के सामने ही शिकञ्जवी बनाने का प्रयास करने पर बिचारी सावित्री इतनी अस्थिर हो गई कि खुद ही बनाकर देना पड़ा। सोते सोते चीख पड़ना तो मामूली बात थी। मौसी के चले जाने पर सावित्री को इसी कालेज की युवती छात्रा के पास सोना पड़ता था। वह डरती जो थी।

आज सावित्री की बीमारी से चुन्नी बड़ी घबरा गई। सेवा करने की इच्छा होने पर भी उसे ज्ञात ही न होता था कि क्या

किया जाय। बिचारी ने चार्ट बनाकर कितनी ही बार रोगिणी का टेम्प्रेचर तो लिख डाला, पर उसे कुछ पथ्य-पानी देना होगा यह याद ही न रहा।

पहिले तो अनिल कालेज समाप्त होते ही लाईब्रेरी चला जाता था। प्रातःकाल के खाने का प्रबन्ध भी होस्टल में ही किया था। किन्तु चुन्नी के आने के कुछ ही दिन पश्चात अनिल खाना भी घर ही खाने लगा। सन्ध्या को भी कभी कभी लाईब्रेरी नहीं जाता। इस परिवर्तन की ओर प्रायः किसी ने भी लक्ष्य न किया। उसे स्वयं ही ज्ञात हुआ कि चुन्नी की कालेज-सम्बन्धी भोली बातों में उसे एक रस मिलता है। सावित्री को लेकर चुन्नी की जो सभा जमती है, उसमें शामिल होने को भी अक्सर अनिल का मन हो आता है। सावित्री भी इस परिवर्तन पर प्रसन्न ही है। निश्छल चुन्नी की बात-चीत, हास्य-कौतुक या आनन्द वह अकेले ही नहीं लेना चाहती, वरन् सारे विश्व को सुना कर लेना चाहती है। अनिल की उपस्थिति उसमें आनन्द ही बढ़ाती थी, फिर इसी तरह सावित्री भी अनिल के निकट आती जा रही थी। कभी कभी परस्पर मज़ाक भी हो जाता था। जिसका आस्वादन सावित्री के लिये बहुत ही मधुर वस्तु थी।

सन्ध्या होते न होते सावित्री अचेत होने लगी। महरा को चुन्नी पहले ही डाक्टर बाबू को बुलाने भेज चुकी थी। अकेले घर में सावित्री की चेतना के साथ ही साथ नलिनी का धैर्य भी लुप्त होने लगा।

अनिल की पद-ध्वनि सुनते ही चुन्नी में प्राण-संचार हुआ। दौड़ती हुई चौखट पर जाकर बोली—"अनिल बाबू, देखो तो सही, यह क्या हो गया?"

भय, चिन्ता और घबराहट ने मिलकर चुन्नी के ताज़े खिले गुलाब के फूल-जैसे मुख पर एक विचित्र भाव ला दिया। थोड़ी देर पहले ही रोने से उसकी पलकें भीगी हुई थीं। पहले से ही जो नेत्र पानीदार थे उनमें दो बूँद पानी अस्ताचलगामी सूर्य की अन्तिम किरण पड़ने से और भी चमक उठीं। कालेज को आज जो काले बार्डर की साड़ी पहन कर गई थी वही अब भी पहने थी। गुलाबी गालों से खिसक कर साड़ी की काली किनारी उसके श्वेत गले में लिपट रही थी। लम्बा पतला गठीला शरीर पूरी ऊँचाई पर खड़े होने से बड़ा ही सुन्दर लग रहा था। आश्चर्य से कपार पर चढ़ी हुई आँखों के ऊपर भौंहें और गुलाबी होठ अनिल को कवि-वर्णित नायिका का ही साक्षात् छवि मालूम हुए। अनिला भी सुन्दर थी। उसके कालेज में भी अनेकों सुन्दर लड़कियाँ वह रोज़ देखता था। उसका अभिन्न मित्र वर्म्मा भी रोज़ ही चित्र दिखा दिखा कर सिर खाता था, पर यह भोलापनपूर्ण प्रश्न लेकर खड़ी हुई नारी-मूर्ति मानो उसका ही सहारा ढूँढ़ने को खड़ी है।

कवि स्वयं भी कुछ न समझ सका। एक मिनट तक चुप-चाप इस मूर्त्ति को देखता ही रहा। उसे पागल की तरह अपनी ओर देखते हुए देख कर चुन्नी अचानक हँस पड़ी।

"अरे अनिल भइया, अन्दर आकर देखो बहिन को कितना बुखार है!"

अनिल को आज 'भइया' शब्द कुछ खटका, किन्तु तुरन्त ही सम्हल कर वह बोला—

"चुन्नी तू भी डरा देती है। बुखार-उखार होगा। सो दवाई लाए देता हूँ। चल देखूँ, तेरी बहिन जी को।" आज अनिल ठिठक गया। प्रति दिन की तरह प्रसन्न मन से चुन्नी का हाथ पकड़ कर अन्दर न ले जा सका।

चुन्नी भी अन्दर आ गई।

"मैं महरा को डाक्टर चावला को बुलाने भेज चुकी हूँ।"

"अच्छा सो तो बड़ा अच्छा किया।"

कह कर अनिल आराम-कुर्सी पर पैर फैला कर बैठ गया। बुखार की तेजी से सावित्री अचेत सी हो रही थी। चुन्नी की घबराहट अनिल को बहुत भायी।

"चुन्नी, इसमें घबराने की क्या बात थी? सिरके और गुलाबजल की पट्टियाँ सिर पर रखने लगतीं।" स्थिर मन से अनिल ने कहा।

"सो सब मुझे नहीं आता। मुझे तुम पट्टी देते जाओ तो मैं रखती जाऊँगी।"

दु:ख के समय भी अनिल हँस पड़ा।

"अच्छा, सो सब मुझे ही करना पड़ेगा, सो मैं जानता हूँ। अच्छा भोजन का क्या होगा? महाराजिन तो सुबह ही बुलाई जायगी। इस समय क्या पूरियाँ मँगवानी पड़ेंगी?"

"नहीं, सो क्यों? हम लोग बना लेंगे।"

उसके 'हम लोग' पर ज़ोर देने पर अनिल फिर एक बार हँस पड़ा।

"हाँ, कालिज की न जाने कौन कौन सी सोसायटी की प्रधान मन्त्रिणी, तो तू मुझसे भी आज खाना पकवायगी ? क्यों ?"

इच्छा रहते हुए भी चुन्नी प्रतिवाद न कर सकी। पर उसे इस स्कीम में भी एक शरारत की गन्ध का आनन्द सा आने लगा।

"बड़ा मज़ा रहेगा।" कहती हुई चुन्नी सिरके की खोज में रसोई घर की ओर चल दी। अनिल सावित्री का काला हाथ अपने हाथ में लिये सोचता ही रह गया।

Black

(vi) Phir -

फिर

सावित्री न जाने किस सायत में बीमार हुई थी, कि पाँच छः दिन हो गये, उठने का नाम ही नहीं लेती। सीता इस समय घर की ओर से निश्चिन्त होकर चौरासी कोस की परिक्रमा कर रही थी। समाचार देने की भी कोई सुविधा न थी। महाराजिन दोनों समय खाना बना जाती थी। पुराना महरा बाकी का काम-काज सम्हाल लेता था। फिर भी सेवा के लिए एक न एक व्यक्ति की आवश्यकता तो थी ही। अनिल सब कुछ स्वयं करने को तत्पर था, पर बहिन की सेवा करने की चुन्नी की भी इच्छा थी। चुन्नी ने कालेज से छुट्टी ले ली और अनिल को सेवा से छुट्टी दे दी। किन्तु फिर भी अनिल कुछ अधिक ही कर्तव्य-परायण हो गया था। या तो कालेज जाता ही न था, और जाने पर भी एक आधे घंटे में ही वापिस आ जाता था। एक दो दिन में चुन्नी को सेवा करने का अभ्यास भी हो गया था। फिर अनिल तो था ही।

सावित्री अधिकतर अचेतन सी ही रहती थी।

अनिल एक उत्तम चरित्र का युवक था। अपने चरित्र-बल

पर अभिमान करनेवाले युवकों में से था। फिर चुन्नी तो उसकी बहिन सदृश थी। और सर्वोपरि वह सावित्री के प्रति प्रेम भले ही नहीं रखता हो या, पर कर्तव्य अवश्य समझता था। सावित्री जब तक पति-परायणा है, तब तक वह भी परस्त्री पर कुदृष्टि न डालेगा, यही उसका ध्येय था। चुन्नी का सहवास उसे बड़ा ही भला लगता था, पर वह इसमें कोई भी दोष न समझता था। अनिला भी आकर रह नहीं सकती थी। यहाँ तो भला चुन्नी थी ही। किन्तु उसकी बीमार सास के पास तो सेवा करनेवाला कोई भी न था। इच्छा करने पर भी वह दिन में ही एक दो बार से अधिक न आ सकी। इसी बीच चुन्नी ने इस युवक का भी थोड़ा-बहुत भार लेना आरम्भ कर दिया। सावित्री की शय्या के पास ही बैठे बैठे चाय बना देना या फल काट देना भी वह जान गई थी।

बदले में अनिल भी इस परमुखापेक्षी बालिका का आश्रय सा बनने लगा था। चुन्नी की असहाय अवस्था देखने तथा उसमें उसका आश्रय बन सकने में अनिल का पौरुष जाग उठा था। उसे अत्यन्त हर्ष होता था। चुन्नी को भी यह कृपा कुछ बुरी न लगती थी। उसने तो सदा लेना ही सीखा था। जब भी जिनके सम्पर्क में आई, उन्हीं से लेती रही। सब के अतुलित प्यार की प्रतिमा—चुन्नी—के लिये यह लेना कुछ नया न था।

उस दिन अवस्था कुछ बिगड़ सी गई थी। चुन्नी डर गई। रोने भी लगी। चुन्नी के आँसू अनिल से न देखे गये, उसने आँसू स्वयं पोंछ कर चुन्नी से कहा,—"पगली न बनो, जो होगा

इसमें किसी का क्या बस है ? चुप रहो।"

चुन्नी के हृदय में न जाने कैसा डर समा गया। उस दिन अनिल को रात की सेवा करनी थी। चुन्नी पास के कमरे में जाकर पड़ रही पर सो न सकी। घबरा कर वहीं आन बैठी। आज सावित्री की साँस कुछ तेज़ थी। अनिल आरामकुर्सी पर बैठा कोई पुस्तक पढ़ रहा था। साथ ही समय समय पर दवाई देकर प्रवेश-द्वार की ओर भी देख लेता था। न जाने किस अप्रत्याशित के आगमन की आशा ने उसे इतना कर्तव्यशील बना दिया था। चुन्नी ने धीरे से प्रवेश किया।

"नीलू भइया, आप तनिक सो जायँ, मैं बैठती हूँ।"

"चुन्नी, तू तो कल की थकी हुई है, जा सो रह।"

"नहीं, मुझे नींद ही नहीं आ रही है।"

सावित्री ज़ोर से कराह उठी। चुन्नी ने पास जाकर धीरे से सम्हाल कर उसकी बाँह अपने कंधों पर रख ली। सावित्री की अचेतन बाँह चुन्नी की गोरी गर्दन से छू रही थी। पीठ को थोड़ा सा सहारा देकर चन्नी ने करवट बदलवा दी। अनिल का ध्यान सावित्री की काली बाँह के चुन्नी की गोरी गर्दन से छूने की ही ओर था। 'कितनी भिन्नता है भगवान् की सृष्टि में!' वह मन ही मन सोचने लगे।

करवट बदलवा कर चुन्नी ने सुराही से लेकर एक गिलास पानी पिया। कुछ स्वस्थ होकर फिर बोली—"जाकर सो रहो। कल कालेज भी जाना होगा।"

"नहीं चुन्नी कल कालेज से छुट्टी की दरख़ास्त दे आया हूँ। फिर मुझे भी नींद नहीं आ रही है।"

चुन्नी ज़मीन में ही दीवार के सहारे बैठ गई। ठण्डा फर्श भला लग रहा था।

"कुछ पढ़ेगी चुन्नी ?"

"दे दो।" कह कर चुन्नी ने छोटी सी लाल हथेली फैला दी, जिस पर अनिल ने एक पुस्तक रख कर टेबिल-लेम्प पर पड़े हुए नीले आवरण को चुन्नी की ओर से कुछ उठा दिया।

मन मानता ही न था। बार बार अनिल की इच्छा होती थी कि अपनी पुस्तक छोड़ कर चुन्नी के मुख पर ही दृष्टि जमाये रहे। लाचार होकर अनिल बाहर बरामदे में टहलने लगा। सावित्री को शायद स्वाभाविक नींद आ गई थी।

अनिल सोचने लगा—"एक दिन यही स्वर्ण-प्रतिमा मेरी पत्नी होने को थी। ओह, तब यही इस घर की अधिकारिणी होती। मेरे स्वप्न-जगत् की, जाग्रत जगत की और सब ओर की नायिका होती। किन्तु नहीं नहीं, वह पराई है। उसके विषय में आज सोचना भी पाप है। पर क्यों ? मानव सौन्दर्य-प्रिय जीव है। सौन्दर्य्य की प्रशंसा तो पाप नहीं।"

मन ने कहीं से सजग होकर साँप की तरह फुँफकार कहा—"पर महात्मा, सौन्दर्य की प्रशंसा का ही हर समय ध्यान रहना ही तो पाप है अथवा वह भी नहीं ? कह डालो। कहने में हानि ही क्या है ? वह भी किसी आर्ट की प्रशंसा के समान ही है। घंटों

उसे ही घृणा भी कोरी प्रशंसा ही है।" क्रोध से मन पर प्रत्याघात करते हुए अतृप्त वासना ने कहा—"यह सब दकियानूसी बातें हैं। अन्धकारपूर्ण प्रवृत्तियाँ हैं। मानव की मानव के प्रति प्रशंसापूर्ण दृष्टि पाप नहीं, अपराध भी नहीं, अनर्थ भी नहीं, कुछ भी नहीं है। यह मूर्खों की बातें हैं। सरला चुन्नी पर मेरा सरल स्नेह है। यह पाप कदापि नहीं हो सकता। इसमें वासना की गन्ध तक नहीं। हृदय का समस्त प्रेम मैं सावित्री के चरणों में भले ही समर्पित न कर सका। पर वह मैं चुन्नी को थोड़े ही दे रहा हूँ। और आज नहीं तो कल उसका विवाह हो ही जायगा।" विवाह ! चुन्नी का विवाह ! अनजाने ही अनिल को मानो सर से पैर तक सहस्रों बिच्छुओं ने डंक मारा।

घबरा कर इस सत्य से छुटकारा पाने को अनिल अन्दर आ गया। तब तक चुन्नी अपने नन्हें पैर फैलाकर फ़र्श पर ही सो गई थी। एक हाथ संगमरमर की श्वेत स्तम्भिका की भाँति सर के नीचे पड़ा था। दूसरा छाती पर उसी पुस्तक को पकड़े था। छाती पर पुस्तक खुली पड़ी थी। पैरों की धोती कुछ ऊँची हो गई थी। श्वेत पिंडली का भी कुछ भाग दीख रहा था, जिस पर पड़ी हुई नीली किनारी खूब शोभा दे रही थी। छाती पर पड़ी हुई पुस्तक श्वास के साथ कुछ कुछ काँप उठती थी।

दया-भाव से अनिल ने पास पड़ा हुआ तकिया उठा कर चुन्नी के पास पहुँच कर सुगन्धित तेल की सुवास से भरा हुआ उसका सिर उठा कर तकिया उसके नीचे रख दिया। चुन्नी के

करवट लेते ही सुरमई चूड़ियों-सहित कमल दण्ड सी कोमल कलाई अनिल की गोद में जा पड़ी। सबसे छोटी अँगुली में पड़ी हुई नीले नगीने की अँगूठी चिल्ला उठी—"हमारा अनादर न करो, हम उपेक्षा की वस्तु नहीं।"

चरित्रवान अनिल जागृति की सीमा से बाहर जा पड़ा। न जाने किस अज्ञात मूर्च्छना में उसने उन पाँचों अँगुलियों को अपने तप्त होठों से लगा लिया। होश में आने पर जब वह जल्दी से हाथ नीचे रख कर उठ खड़ा हुआ, तब तक भी पुन्नी गहरी नींद में सो रही थी।

(vii) Doosri Seedi.

दूसरी सीढ़ी

"चुन्नी रानी, जा लेट जा बिटिया।" क्षीण स्वर में सावित्री ने कहा।

"कहाँ दीदी, मैं कोई ऊँघ थोड़े ही रही थी।" चुन्नी प्यार से सावित्री को जीजी, जिज्जा, दिदिया आदि न जाने क्या क्या कहती थी। इधर कुछ दिनों से अनजाने ही उसका चित्त कुछ चञ्चल सा रहा करता था। उस रात जब वह अचानक ही धरती पर बैठे ही बैठे, सो गई तो सुबह उसकी कमर में दर्द हो रहा था। किन्तु प्रातः होते ही दो घटनाएँ और हुईं। सावित्री का ज्वर कुछ कम हुआ और अनिल अपने कमरे में बड़ी देर तक पढ़ता रहा। समय होने पर कालेज भी चला गया, यहाँ तक कि चुन्नी कमर के दर्द की बात भी न कर सकी। जीजी का बुख़ार कम होने से चुन्नी को बड़ी प्रसन्नता हुई, पर अनजाने ही अनिल के प्रति उसका मन अभिमान से भर उठा। रात को मैं ज़रा सो ही गई तो ऐसा कौन सा अपराध हो गया। मुँह से बोलते ही नहीं। स्वभाव से ही लापरवाह होते हुए भी चुन्नी यह भली प्रकार समझ

गई कि अनिल उसी से छिपता है। चुन्नी के कालेज चले जाने पर इन दस दिनों के बीच दो तीन बार सावित्री से भी मिल लिया है। पर चुन्नी की तो झलक से भी वह भागता है। उस दिन चुन्नी त्रिपाठी की 'हिस्ट्री आफ इण्डिया' अनिल की आलमारी से लेने उसके कमरे में चली गई। अनिल दरवाज़े की ओर पीठ किये हुए शायद कोई चित्र बड़े ध्यान से देख रहा था। चुन्नी ने छेड़ कर कहा भी—"अनिल भइया, हमें भी दिखाओ।"

अनिल चौंककर बिना ही उत्तर दिये सड़क की ओर वाले बरामदे में चला गया। चुन्नी ने सारे जीवन में कभी भी किसी की उपेक्षा नहीं देखी थी, सहने का तो नाम ही क्या। संसार भर से प्यार पाने का उसका जन्म-सिद्ध अधिकार है, यही उसे जान पड़ता था और 'मैंने उसका बिगाड़ा ही क्या है?' ढूँढने पर भी बिचारी चुन्नी को कहीं अपना दोष दिखाई नहीं दिया। फिर भला नारी की पुरुष द्वारा इतनी उपेक्षा! इतना अनादर! बाल-स्वभाव की होते हुए भी चुन्नी यह सह न सकी। अपना कमरा बन्द करके अच्छी तरह रो चुकने के बाद चुन्नी सावित्री के पास पहुँची। सावित्री ज्वर से छुटकारा पा चुकी थी। चुन्नी की लाल आँखों को देखते ही समझ गई कि वह अनिल से लड़ कर आई होगी, किन्तु पूछने पर चुन्नी ने कहा—"बहिन, कल रात ठीक से सोई नहीं, इसी से कुछ लाल होंगी।"

चुन्नी का उत्तर सुन कर सावित्री ने प्यार से कहा—"मेरे पास आ, चुन्नी। ऊँघ तो नहीं रही है, पर आ ज़रा मेरे पास ही

लेट रह।" सावित्री की दुर्बल देह बड़े पलंग के एक कोने में पड़ी थी और यह लोक चुन्नी के लिये आकर्षक वस्तु थी।

चुन्नी फूट पड़ी। सावित्री के पास ही लेट कर रोने लगी। सदा हँसनें वाली चुन्नी का यह रोना सावित्री के लिये एक दम अपरिचित था। धीरे धीरे चुन्नी के सिर पर हाथ फेरती हुई पूछने लगी। "क्या हुआ मेरी रानी, बोल तो सही। तेरी बिल्ली ने कोई चूहा खा लिया क्या ? या उषा से कालेज में लड़ाई हो गई। बता तो सही।"

बड़ी मुशकिल से रोना कम कर के चुन्नी ने कहा—"बहिन, अनिल दादा न मालूम क्यों मुझ से नाराज़ रहते हैं। हर समय झिड़क ही देते हैं। खैर यह भी सही, पर अब तो बोलते तक भी नहीं। अभी मैंने कहा—हमें भी दिखाओ क्या देख रहे हो—तो उठ कर बिना बोले ही बरामदे में चले गये। दीदी, मैं क्या इतनी बुरी हूँ ? मैं कल घर चली जाऊँगी।"

सावित्री कमज़ोर होने पर भी हँसी न रोक सकी। हँसती हुई बोली,—"अच्छा, मैं तुम्हारा मेल करा दूँगी। अब तो चुप कर, चुन्नी।"

चुन्नी का रोना कम हो रहा था, पर सावित्री का समस्त मुख मानो धूमिल हो उठा। आह, उसने यह क्या कह डाला ? विधि की कैसी विडम्बना है ? वह उनका मेल करवा देगी। किन्तु उस अभागिनी नारी का मेल कौन करवायेगा, यह शायद समस्त ब्रह्माण्ड में बतानेवाला कोई न था।

"मेरी इतनी कठिन बीमारी में भी स्वामी परीक्षा में लगे हैं।" यह विचार सावित्री को किसी तरह भी सह्य न हुआ, किन्तु यदि जान पाती कि पति उसकी शय्या के पास रात-रात भर जागा है, तो शायद वह जागना सह सकना उससे भी अधिक कठिन होता। चुन्नी सावित्री की मनस्थिति के परिवर्तन को न पहचान पाई, फिर भी कुछ देर तक चुपचाप ही पड़ी रही। इसी बीच कब अनिल द्वार तक आकर वापिस लौट गया, यह उन दोनों अन्यमनस्क नारियों में से कोई भी जान न सकी।

सन्ध्या समय चुन्नी ने स्वयं पापड़ भून कर सावित्री के सामने ही बिठा कर ला ला कर अनिल को भोजन करवाया। सावित्री के कहने से अनिल अपनी ग़लती तो समझ गया, फिर भी अनेक यत्न करने पर भी प्रसन्न मन से चुन्नी से बात नहीं कर सका। किसी प्रकार जैसे तैसे दो पूरी ही खाकर जब अनिल उठने लगा तो चुन्नी बोल उठी—"हाँ, मैं ला रही हूँ इसी से शायद पूरी भी कड़वी हो गई। नीलू दादा उठो मत। महरा पूरी दे जायगा।"

तिस पर भी प्रसन्न मन से अनिल पहले की भाँति न कह सका,—"ला, खिला कितना खिलाती है चुन्नी।" मन ही मन कहा—"जिन पाँचों अँगुलियों की छाप आज भी मेरे हृदय में सुरक्षित है उनकी दी हुई कड़वी चीज़ भी भले प्रकार खा सकूँगा।" पर प्रकट इतना ही कह सका—"सचमुच भूख ही नहीं है।"

"अभी तुमने खाया ही क्या है? एक आधी पूरी और खा लो। ला चुन्नी पूरी ले आ, थोड़ी लौंजी भी लेती आना।"—सावित्री ने

पड़े ही पड़े कहा। स्वामी खा रहे थे इससे मानो उसकी अपूर्व तृप्ति हो रही थी।

अनिल झुँझलाहट को मन ही मन दबा कर बैठा रहा। तब तक चुन्नी एक छोटी सी थाली में दो पूरियाँ और पत्थर की कटोरी में लौंजी लिये आ पहुँची। फिर अनिल स्वयं भी नहीं जान सका कि हव कितनी देर तक खाता रहा पर यदि महाराजिन से पूछा जाता तो वह अवश्य कह देती कि आज उसने और दिन से कुछ अधिक ही खाया। सावित्री आज बहुत प्रसन्न थी। उसने आज स्वामी के दर्शन भी दो दिन बाद किये थे न? लेकिन अनिल के मुख पर पड़ी हुई कालिख को देख कर सावित्री चिन्तित हो उठी।

"आज इतने उदास क्यों हो?"

"कहाँ, तुम्हें तो यों ही भ्रम रहता है, सावित्री।" बात टालते हुए अनिल ने कहा।

"न इच्छा हो तो न बतलाओ।" कह कर सावित्री ने करवट बदल ली। यह सगर्व सौभाग्यवती नारी का जाग्रत अभिमान न था। यह थी दीनता, लाचारी। अभागिनी सावित्री ने स्वामी पर अभिमान करने का अधिकार ही कब पाया था? उसे तो स्वामी की चिन्ता में चिन्तित होने का भी अधिकार किसी दिन भी प्राप्त नहीं हुआ था। चेष्टा करके भी किसी दिन वह अधिकार छीन भी नहीं पाई थी। वेदना के तप्त आँसू छिपाने के लिये करवट आवश्यक थी। अनिल का मन बहुत ही दुर्बल हो गया था। सावित्री के सौभाग्य का अंतिम आशा-दीप भी अज्ञात रूप से छीना

जाता देख कर अनिल को भी उससे कुछ सहानुभूति हो गई थी। उसे चिढ़ाना अनिल का उद्देश्य न था। और फिर अब उसे एक अज्ञात भय सा भी ज्ञात होता था। चुन्नी नीचे खाना खा रही थी।

अनिल ने पहली ही बार सावित्री के पास जाकर प्यार से कहा—"सावी, नाराज़ हो गई? अरे, इतनी सी ही बात पर? मैं तो बिलकुल ठीक हूँ। यों ही ज़रा सिर-दर्द था। खाना खाने से वह भी जाता रहा।"

सिर दर्द की बात सुन कर सावित्री घबरा उठी। बुखार से पूर्व उसे भी तो सिर-दर्द हुआ था। कहीं इन्हें भी........।

"महरा को भेजो, डाक्टर से कोई दवा ले आये। तुमने टाईफाइड का इन्जेक्शन करवाया या नहीं?" अनिल की इच्छा हुई कि कह दे, "मैं इतना भाग्यवान नहीं हूँ।" पर सम्भल कर बोला, क्योंकि अब सावित्री को जलाने के लिये आत्मतेज कहाँ से लाता, वह तो पहले ही चुन्नी के चरणों पर चढ़ चुका था।

"हाँ, सो डर तो नहीं है, सावित्री! और अब दर्द ठीक भी हो गया। फिर भी तुम कहती हो तो महरा को डाक्टर के घर कहला भेजूँगा।"

सावित्री की चिन्ता दूर तो न हुई, पर वह चुप हो गई। बहुत दिनों बाद अनिल और चुन्नी बड़ी देर तक सावित्री के पास ही बैठे बातें करते रहे। रात अधिक होने पर अनिल बाहर आ गया।

इतना बड़ा छल करके भी पत्नी से उसे छिपा जाने पर आज अनिल स्वयं लज्जा से भरा जा रहा था। शय्या उसे काटती थी।

घर के ग्रुप फ़ोटो में चुन्नी बड़े ही भोलेपन से एक कुर्सी पर तिरछी सिर खोले बैठी है। वही फ़ोटो कमरे की दीवार पर लगा, सैकड़ों ही बार अनिल देख चुका था। समय समय पर उसे उतार कर भी देखता था, पर आज उसकी ओर देखने की हिम्मत ही नहीं पड़ती थी। जान पड़ता था, फ़ोटो में सावित्री की छवि धिक्कार रही है। और चुन्नी तो मानों मुँह ही चिढ़ा रही है। "ओह, मैं कितना नीच हूँ ! भोली बालिका जो कि मुझे भाई कहती है, उसी पर कुदृष्टि। माना सावित्री सुन्दर नहीं। चुन्नी अनुपम सुन्दरी है। यह भी सच है कि एक दिन यही चुन्नी मेरी हृदय-हार होती, किन्तु फिर भी आज जो कुछ सावित्री को दिया जा चुका है वह लौटाया नहीं जा सकता। वह मेरी धर्मपत्नी है। प्रेम की अधिकारिणी न होने पर भी शरीर की अधिकारिणी वह ही है। और चुन्नी मेरी कौन है ? कोई भी नहीं, कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं ! मैं कभी उसका ध्यान नहीं करूँगा। वह मेरी कोई नहीं। "हृदय की समस्त शक्ति के साथ चिल्लाने पर भी हृदय शायद यह मान न सका। वह तो उसी को, कुछ भी न होते हुए, सब कुछ मानने को बावला हो रहा था। हृदय और बुद्धि के इस अनवरत युद्ध में अनिल सारी रात सो न सका। कभी एक प्रबल हो उठता था और कभी दूसरा। इसी संघर्ष में कब सूर्य्य भगवान पूर्व में आ विराजे, अनिल को यह जान ही न पड़ा।

उधर घर के अन्तःपुर में भी एक प्राणी स्वामी की अस्वस्थता को लेकर सारी रात चिन्ता में व्यस्त रहा। सूर्य की आकाश

में आगमन की तैय्यारी देख कर ही उसने कहा—"चुन्नी, उठ बहिन, देख तो आ उन्हें बुखार तो नहीं हो गया। रात सिरदर्द था।" पर चुन्नी गाढ़ी नींद में सोती ही रही।

(viii) Agin-Kand

अग्नि-काण्ड

"जीजी फर्स्ट डिवीज़न।"

"अरे सच!" आनन्दातिरेक में चुन्नी ने नन्हें से गुल्लू का मुख चूम लिया। घर भर के बच्चे चुन्नी के अन्तरंग मित्र थे। दो पहर को, चाची के सो जाने पर, छींके के नीचे एक के कन्धे पर चढ़ कर, दूसरे को सीढ़ी बना कर, उसकी पीठ पर चढ़कर, हँडिया से दूध या दही चुरा कर, मुहल्ले भर के पिल्लों को पिलाने से लेकर, गंगू कहार के चिढ़ाने पर उससे बदला लेने तक के महत्वपूर्ण कार्य्यों में चुन्नी की सलाह अत्यन्त आवश्यक मानी जाती थी। और वह इसीलिये कि समय समय पर वह उपयोगी तो सिद्ध होती ही थी, साथ ही साथ पीठ पर पड़नेवाले धौलधप्प में भी उससे अक्सर कमी हो जाती थी। जब से चुन्नी इस बार देहली से परीक्षा देकर वापस लौटी है, बच्चों तक ने जान लिया है कि वह कुछ अन्यमनस्क सी रहती है। पूछने पर कह देती है, जी नहीं लगता।" चाची हँस कर कहती है, "मुन्नी को देहली की हवा लग गई।" पर बच्चे इस पर हँस नहीं पाते। मुख लटका

कर चल देते हैं। पहले एक दो दिन के सिवा चुन्नी ने यहाँ आ कर पहले जैसा ऊधम नहीं मचाया। उसे रह रह कर सावित्री की बड़ी याद आती थी और हाँ, शायद अनिल की भी। अतृप्त अज्ञात दुर्जय शत्रु वासना इस भोलीभाली लापरवाह सोलह-सतरह वर्ष की बालिका को अनिल की बातों में से अतुल रस ढाल कर देती थी। अनिल उसे लाइब्रेरी से ढेर से उपन्यास और अन्य पुस्तकें लाकर देता था। सन्ध्या-समय अब टेनिस भी सिखाने लगा था। सावित्री को इन बातों में से कुछ भी बुरा न लगता था। वरन् इधर अनिल का मन सावित्री के प्रति भी कोमल सा हो गया था। सावित्री इसे ही अपना भाग्य समझ कर प्रसन्न थी। टेनिस खेलने का काफ़ी अभ्यास वह पिता के घर ही कर चुकी थी, किन्तु आग्रह करने पर भी वह अनिल के साथ क्लब न जा पाती थी। अनिल और चुन्नी दोनों ही 'यमुना क्लब' के मेम्बर थे। शाम को रोज़ ही साइकिल उठाकर साथ साथ चले जाते थे। सब कुछ होते हुए भी दो व्यक्तियों को अनिल और चुन्नी का यह बाधाहीन सम्मेलन अच्छा न लगता था। उनमें एक थी पुरखिन सीता और दूसरी पराये घर की बहू अनिला। सीता को तो सावित्री मीठे स्वर से नये जमाने की बातें सुना कर निश्चिन्त कर देती थी, पर अनिला के साथ विवाद करने का न उसे अवकाश था और न इच्छा। फिर भी अपने श्रद्धा के केवलमात्र पात्र, असहाय दुर्दिन के एकमात्र साथी भगवान के चरणों में बैठ कर "आओ हृषीकेश, मेरे हृदय में स्थित होकर

आदेश करते जाओ। मैं तो, जैसा कहोगे वैसा ही करती जाऊँगी"—कहकर सावित्री निश्चिन्त हो जाती थी। उसे स्वामी का प्रेम कभी नहीं मिला था, किन्तु उसने स्वामी पर विश्वास, अगाध श्रद्धा किसी दिन भी कम नहीं की थी, यही उसके जीवन का सहारा था। इसी एक बन्ध को पकड़े जीवन-सागर पार कर डालने का दुस्साहस करना उसका ही काम था।

परीक्षा दे चुकने के पश्चात् अनिल ने चुन्नी को लेदरवर्क तथा चित्रकला की कक्षा में प्रवेश करने की सलाह दी, किन्तु चुन्नी की इच्छा नन्हें बच्चों के साथ ताली पीट-पीट कर कहने की हो रही थी, कि देखो अब मैं भी तुम्हारी ही तरह आज़ाद हूँ। परीक्षा का भूत उतर गया, बह गया। उधर चाचा का पत्र भी आया था कि फौरन चली आ। चुन्नी घर चली गई। अनिल के संसार का जो थोड़ा सा सुख, तनिक सा विनोद था, वह भी छिन गया। ऊपर से सावित्री के प्रति अधिक सदय, अधिक नम्र होते हुए भी अनिल को शान्ति न थी। परीक्षा समाप्त होते ही उसने पी. सी. एस. कम्पीटीशन की तैयारी आरम्भ कर दी। समय का अभाव अनिल की वास्तविक मनोवृत्ति को छिपा ले गया। सावित्री अब प्रसन्न थी। उसने अपने देवता को सेवा से जीत लिया था न! सीता निश्चिन्त थी और कभी-कभी घर आने वाली पराई बहू अनिला शंकित। फिर भी सब शान्त था। अनिल अब कुछ दिनों से पढ़ाई का ज़ोर होने के कारण बैठक में ही सो रहता था। बैठक में देर तक बत्ती जलती रहने के कारण सावित्री

को दिनोंदिन प्रति के स्वास्थ्य की चिन्ता अधिक होती जा रही थी। माँ भी कभी-कभी लाड़ले एकलौते लड़के को दो चार सुना देती थी। पर वैसे सुयोग्य बहू के हाथों में लड़का सौंप कर उन्होंने ठाकुर द्वारे में ही अपना उचित स्थान चुन लिया था। दो समय का भोजन और अधिक रात तक सावित्री से रामायण या सुखसागर टीका-व्याख्या-सहित सुनना यही उनका घर से नाता था। सावित्री को सीता-बनवास बहुत ही प्रिय था। उसका स्वर कोमल था। पहले तो वह जब रामायण में सीता-बनवास की चौपाइयाँ गाकर पढ़ती थी तो घर गुंजरित हो उठता था, पर इधर अनिल की पढ़ाई का ज़ोर हो जाने से वह धीरे धीरे पढ़ कर व्याख्या मात्र ही कर देती थी। दोनों पति-वञ्चिता रमणियाँ भिन्न-भिन्न स्थिति में होती हुई भी उस स्थल पर आँखें गीली होने से नहीं रोक पाती थीं। क्यों ? सो कहना बहुत ही दुरूह है।

उधर चुन्नी का भी जी अधिक देर तक घर न लगा। वहाँ टेनिस खेलने को भी तो कोई न था। एक दिन क्लब में उसके गुरु अनिल ने कहा था,—"चुन्नी तू ने तो कमाल कर दिया। इतनी जल्दी ऐसा अच्छा टेनिस खेलते तो मैंने किसी को भी नहीं देखा !" वह टेनिस की ऐसी अच्छी खिलाड़िन हो गई है; पर वह चातुर्य्य दिखाये किसे ? गँवार चाची को, जो दिन में दस बार सुनाती हैं—"चुन्नो बिटिया, चल, अचार डालती हूँ, देख तो सही ज़रा ! पराये घर जाना है, वहाँ चाची तो जाकर अचार डाल नहीं आयगी बिटिया।" तब क्या चुन्नी के टेनिस-चातुर्य्य

का कुछ मूल्य ही नहीं और अगर मूल्य है तो केवल बड़ियाँ, पापड़ मुरब्बे और अचार डालने का ही। वह तो मैं कल ही आ कर खारी बावली से हज़ारों भर ला सकती हूँ, पर खेल की जाँच तो बाज़ार में मिलेगी नहीं।

एक दिन चुन्नी ने कालेज की एक फैन्सी ड्रैस पार्टी में जाने के लिये चूड़ीदार पाजामा, लाल रेशमी कुर्ता और हलकी गुलाबी नून की चुन्नी ओढ़ी थी। उस दिन लिपस्टिक का भी रंग कुछ गाढ़ा रक्खा था। काले मोतियों के बने झुमके भी पहने थे, उसे मुसलमानिन जो बनना था। चूड़ियाँ भी ढेर सारी खूब लाल रंग की पहनी थीं। सीता देखकर हँसने लगी,—"अरी ओरी बीबी, मेरे बर्तन भाँडे न छू देना।"

सावित्री ने हँसी से लोटते हुए कहा—"चुन्नियाँ बीबी, ज़रा काजल तो कम कर लेतीं, क्या बिलइया हँड़िया चाट कर आई है?"

पर अनिल कैसे उत्साह से भर उठे, "चुन्नी, ज़रा ठहरो तुम्हारी ऐसे ही तस्वीर ले लूँ।"

तस्वीर के लिये ठीक खड़ा करते हुए उन्होंने ज़रा हँस कर धीरे से कहा था,—"चुन्नी तो आज नूरजहाँ बन रही है।"

रूप की प्रशंसा किस नारी को नहीं भाती, विशेषतया सुन्दर नारी को? चुन्नी गर्व से फूल उठी। नीलू भइया बड़े अच्छे हैं, यही उसके विचारों का केन्द्र था। वह अच्छा सी नहीं पाती, इस लिये सब ही तो उसका मज़ाक उड़ाते हैं, पर नीलू भइया तो सदा

उससे कढ़वा कर ही रूमाल रखते हैं। वह कालिजिएट हैं। उन्हें क्या कढ़ाई की इतनी भी परख नहीं।

यही सब बातें चुन्नी के मस्तिष्क में आकर उसे उदास कर देती हैं। अब भला मैं यहाँ बैठ कर क्या करूँ? यहाँ तो कोई बात-चीत का विषय ही नहीं मिलता। बच्चों से खेलते अब उसे लज्जा आती थी, छी: मैं क्या बच्चा हूँ? इतनी बड़ी लड़की कोई खेलती अच्छी लगती है। घर वाले समझते यही तो यौवन का बसन्त है। लड़की का गम्भीर हो जाना ही अच्छा है। कल को पराये घर जायगी।

आज जब गुल्लू उसके फर्स्ट डिवीज़न में पास होने का तार लेकर पहुँचा, तो चुन्नी का बचपन तनिक सा लौट आया। घर भर में खुशी से नाचती फिरी।

शाम को चाचा ने कहा—"बिटिया, अब और पढ़ोगी क्या? हमारी तो सलाह है—अब छोड़ो, कौन तुम्हें नौकरी करनी है! यही अगले साखों में हाथ पीले कर दें? बस, फिर पढ़ाई का क्या होगा? और पढ़ भी बहुत ली हो।"

"नहीं चाचा जी, मैं बी. ए. तो ज़रूर करूँगी। भला, यह भी कोई बात है?" चुन्नी का रूठना देख कर चाचा हँस पड़े।

"अच्छा तो छुट्टियों के बाद जाकर थर्ड ईयर में दाख़िल हो जाना।"

"हूँ, और फिर वह दाख़िल जो नहीं करेंगे।"

"देहली न करेंगे तो लाहौर के किसी अच्छे कालिज में करवा

देंगे। इतना घबराती क्यों है, बेटा ?"

"नहीं मेरा हर्ज जो होगा। मैं तो देहली ही जाऊँगी। अनिल दादा को चिट्ठी लिख दो, मेरे लिये एक सीट रिज़र्व करवा लें।" तार अनिल ने ही दिया था।

लड़की का हठी स्वभाव चाचा से छिपा न था। अभी भेजने की इच्छा न होते हुए भी चाचा ने अनिल को लिख दिया। चुन्नी कुछ दिनों में देहली बी. ए. में दाखिल होने के लिये आ जायगी। पर उसी दिन सन्ध्या को चुन्नी ने अनिल को लिखा—"मैं एक दो दिन में ही आऊँगी। स्टेशन से वायर कर दिया जायगा। स्टेशन पर ही मिलना। शायद चाचा जी भी आयें।"

पत्र ने अनिल बाबू के मस्तिष्क पर जाकर बिजली की किस गति का प्रभाव डाला सो शायद विद्युत-विज्ञान के पंडित लाखों वर्ष मगज़पच्ची करने पर भी जान पायँगे इसमें पूरा पूरा सन्देह ही है।

"क्यों तुम्हें पसन्द नहीं आई ? मेरे एक मित्र की पत्नी तो इस पर ऐसी लट्टू हुई कि मित्र महोदय को उसी समय जाकर बाज़ार से खोज कर ऐसी दूसरी साड़ी लानी पड़ी। वह तो कुशल हुई कि "मोहन ब्रादर्स" के यहाँ मिल ही गई, नहीं तो शायद यह यहाँ तक आ भी न पाती। वह तो कभी न देती। जब उन्हें ऐसी साड़ी मिल गई तब उन्होंने यह छोड़ी।" हँसी का व्यर्थ ही फव्वारा छोड़ते हुए अनिल कहता गया। बात इस प्रकार हुई कि विवाहित जीवन के दो वर्ष बीत जाने पर आज अनिल

घर में ख़रीद कर दो साड़ियाँ लाया। एक नीले रंग की, आकाश जैसे उज्ज्वल छाप की, तथा दूसरी हलके से बादामी रंग की है। बनारस की सिल्क पर रुपहली ज़री से बारीक बारीक कढ़ाई में किनारी बनाई गई है। नीली साड़ी की किनारी पर अर्द्ध सूर्य्य की किरणें फैल कर आस-पास के वातावरण को निःसंकोच भाव से घेर रही हैं। कुछ पेड़ आदि भी उन्हीं किरणों से छाये हुए हैं। बादामी साड़ी की किनारी पर कुछ कमल के फूल पत्तों के बीच बारीकी से छिपे हुए से हैं।

सावित्री ने आश्चर्य से पति की भेंट देखी। अभी पिछले साल ही तो भतीजे के यज्ञोपवीत में मातृ-गृह जाने के समय अनिल ने कहा था—"तुम्हें कोई साड़ी आदि तो नहीं चाहिये, वैसे हैं तो तुम्हारे पास बहुत।"

निराशा से भर कर सावित्री ने कह दिया था "नहीं"। अनेकों साड़ियाँ होते हुए भी पति के हाथ की वस्तु ग्रहण करने की नारी की स्वाभाविक इच्छा भी क्या अनिल समझ नहीं सकता। आज अनायास ही ये साड़ियाँ किस प्रकार आ गईं सो वह समझ नहीं पाई, फिर भी पति का दान प्रसन्न मुख से ग्रहण किया, बिना समझे हुए ही कि वह प्रेम था या दया?

सावित्री ने प्रसन्नता से कहा,—"बहुत ही सुन्दर हैं। कितने को लीं?"

"सो न पूछो सावी! तुम्हें तो बादामी रंग की पसन्द है न?"

"हाँ"

"फिर भी एक तुम अपने लिये छाँट लो। दूसरी चुन्नी को अपनी ओर से पास होने पर दे देना। छोटी बहिन मानती हो न।" कह कर अनिल स्वयं ही झेंप सा गया।

"हाँ, लो मुझे तो ध्यान ही नहीं आया कि कुछ देना भी चाहिये।"—कहते कहते ही सावित्री का मन छोटा हो गया। स्वच्छ मन और प्रसन्न मुख से वह सोच न सकी। तब क्या मेरे लिये साड़ी चुन्नी की साड़ी की भूमिकामात्र ही थी। पर इसकी आवश्यकता ही क्या थी ? तनिक ईर्ष्या से सावित्री अपने हृदय को अछूता न रख सकी। अनिल सावित्री के भाव-परिवर्तन को लक्ष्य कर लज्जा से भरा जा रहा था। कहीं इसने जान तो नहीं लिया। ओह, यह बखेड़ा नहीं करता तो अच्छा था। पर नीली साड़ी चुन्नी के गौर शरीर पर कैसी खिलेगी, सोचे बिना भी अनिल रह न सका।

तुरन्त ही अपने को सम्भाल कर सागर सी प्रशान्त गम्भीर सावित्री ने ज़बरदस्ती ठेल कर सन्देह दूर भगा कर स्वामी से कहा,—"तो भला इतने रुपये खर्च करने की क्या आवश्यकता थी। मुझे सुझा भर देते, मेरे पास तो कितनी ही अछूती साड़ियाँ रखी हैं, उन्हीं में से एक उठा देती। आज कल तो मँहगी भी बहुत मिली होंगी। ख़ैर, जब तुम ले ही आये हो तो नीली चुन्नी के लिये रख लेती हूँ, मुझे तो अभी कोई जरूरत नहीं। वह बादामी वापिस कर दो।"

"तब फिर जाने दो सावी, चुन्नी को इच्छा हो, कोई दे देना।

यह दोनों ही वापिस कर आता हूँ।"

निराशा से अनिल का मुख सूख गया। उसने दोनों ही साड़ियाँ उठा लीं। पति के उतरे हुए चेहरे पर गहरी वेदना सावित्री से देखी न गई।

उसने दोनों साड़ियाँ अनिल के हाथ से ले लीं।

"अगर इतनी इच्छा है तो रखे लेती हूँ। पर फिर कभी इस तरह इतने रुपये न डाल बैठना। मुझे जो कुछ चाहिये होता है, माँजी से कहकर मुंशी दादा से मँगा ही लेती हूँ।" घनी वेदना से सावित्री ने कहा। आज पहले ही पहल अनिल को अपने पति-वेश में त्रुटि का ज्ञान हुआ। बड़ी दीनता से उसने कहा—

"सो मुझ से ही कह दिया करो, सावित्री !"

"अच्छा, अब तुमसे कह दूँगी। पहले तो कहा कई बार, पर तुम सुनते ही न थे।"

"अब ऐसा न होगा।"

"देखूँगी !" कह कर परिस्थिति हलकी कर डालने के लिये सावित्री स्वयं हँस पड़ी। अनिल भी हँस पड़ा। आज वह बड़ा प्रसन्न था। चुन्नी शाम की गाड़ी से देहली पहुँच रही थी। सावित्री भी प्रसन्न थी। पर साड़ियों की घटना के पश्चात उसके स्वच्छ दर्पण सरीखे मन में एक काली छाया सी पड़ गई थी, जो उसके मिटाये मिट नहीं रही थी। यत्न करने पर भी आज सास के पास बैठ कर रामायण पढ़ने में भी उसका मन न लगा। रह रह कर हृदय पर एक भार सा लगता था। मन ही मन वह भाभी की

शिक्षा दोहरा लेती थी, "लल्ली ! पति पर अविश्वास करके छोटा बन जाने से यह कहीं अच्छा है कि उस पर विश्वास करके धोखा खाकर पश्चाताप करलो। उसमें वेदना है, पर जलन नहीं, जब कि पहले में वेदना और जलन, दर्द और भयंकर ज्वाला दोनों ही हैं।" फिर भी वह चुन्नी पर ही झुंझला उठती, फिर स्वयं ही अपने उद्दण्ड मन को समझाती—"उन्होंने मुझसे किसी दिन भी प्रेम नहीं किया। साधारण मित्रता का भी अधिकार न दे सके, फिर यदि स्वाभाविक आकर्षण उन्हें किसी ओर ले ही जाय, तो मैं कौन से अधिकार से, किस प्रबल दावे से, उन्हें रोक सकती हूँ ? सृष्टि भले ही कुछ कहे, पर मैं उन की हूँ ही कौन ? और मैंने उन्हें सुख ही कौन सा दिया है ?"

फिर भी नारी का सजग हृदय मानता ही न था। समझाने पर भी नहीं, डाँटने पर भी नहीं ! धमकाने पर भी नहीं !!

यहाँ तक कि जब चुन्नी सन्ध्या-समय ताँगे से उतर कर चिल्लाती हुई आकर सावित्री के गले से चिमट गई तो सावित्री एक क्षण के लिये जल उठी। पर तुरन्त ही उसके सहज स्वाभाविक प्रेम ने ज़ोर मार कर स्थिति पूर्ववत कर ली। सावित्री ने चुन्नी के भोले मुख को देख कर सहज ही सन्देह भगा डाला। यह दुधमुँही, भोली लड़की, डाकू नहीं हो सकती ! इससे किसी का कभी अनिष्ट हो सकता है, यह कल्पना भी असम्भव है। सावित्री ने अपने गुरुतर अपराध के भार से स्वयं अपने को ही छोटा हुआ समझ कर चुन्नी को बड़े ज़ोर से छाती से चिमटा लिया। "रानी, घर जाकर बहिन की याद भी नहीं रही।"

"बहिन, रोज़ एक चिट्ठी लिखती थी और फिर फाड़ डालती थी। जब तुम्हें लिखती तो सोचती नीलू भइया न गुस्से हो जायँ जब उन्हें लिखती तो सोचती तुम न लड़ पड़ो, फिर चिट्ठी इसी झमेले में डाल ही नहीं पाती। इसी सोच-विचार में दिन चला जाता। नीलू भइया भी स्टेशन पर यही शिकायत करते थे।"

बड़ी ज़ोर से चुन्नी हँस रही थी। सावित्री सोच रही थी यह तो कितनी निर्दोष खुली हँसी है, जान पड़ता है इसके पीछे कहीं कुछ भी रत्ती भर भी छिपा हुआ नहीं है, अलक्ष्य नहीं है। सब साफ़ है, खुला हुआ है, स्वच्छ है। यह तो कुटिल प्राणों का दुराव नहीं, सरल की सफ़ाई मात्र है। इसमें कुटिलता का समावेश ही कहाँ है? स्थान ही कहाँ है?

अनिल चुन्नी के साथ ही स्टेशन से आया था। चुन्नी के चाचा नहीं आ सके। उन्हीं के गाँव का एक परिचित परिवार देहली आ रहा था। उन्हीं के साथ चुन्नी आ गई थी, फिर स्टेशन पर तो अनिल होगा ही यही सोच कर चाचा ने चुन्नी को भेज दिया था। और फिर चुन्नी भी तो बी० ए० की छात्रा थी। रास्ते में अनिल ने चुन्नी से बहुत सी बातें कीं, पर चुन्नी प्रायः अधिकांश समझ ही न सकी। फिर उसे तो अपने कालिज की याद अधिक आ रही थी। घर के अन्दर चुन्नी को भेज कर अनिल स्वयं नहीं आया। सावित्री के सम्मुख होने का उसे साहस भी नहीं हुआ। रात निकट आ रही थी। अनिल का साहस सावित्री के सम्मुख पड़ने का ही नहीं हो रहा था।

प्रायः दोनों समवयस्का सखियाँ चाँदनी से भरी छत पर बातचीत कर रही थीं। चुन्नी दिन भर की थकी बातें करते करते ही सावित्री के साथ ही एक चारपाई पर लेटी लेटी ही सो रही। सावित्री ने उठना चाहा पर उसकी साड़ी का पल्ला चुन्नी के नीचे दबा था। अनिल ने इसी बीच आकर कहा—"अरे चुन्नी यहीं सो गई। सोने दो मैं बाहर वाली छत पर सो जाऊँगा।

"नहीं, अपने बिस्तरे यहाँ दूसरी छत पर बिछवाये लेती हूँ। माँ जी यहाँ आकर सो रहेंगी।"

"नहीं, नहीं, तुम यहीं सो रहो, कष्ट क्यों करोगी, मुझे तो आज रात देर तक पढ़ना भी है। दो चार घंटे सोना है, सो आराम से चारपाई डलवा कर सो रहूँगा, तुम लेट जाओ, मैं जाता हूँ।"

अनिल की इच्छा हुई कि कह दे,—

"तुम लेट जाओ थकी-थकाई चुन्नी पल्ले के खिंचाव से कहीं जाग न उठे।" पर इच्छा करते हुए भी कह न सका। मानो किसी ने जिह्वा पकड़ ली हो। उधर सावित्री को यह इन्कार कुछ भला न लगा। पति पर अविश्वास करके उसने जो अपराध किया था, वह उसके हृदय में कसक रहा था। अनिल की दो चार मीठी बातों से शायद वह कसक मिटती, पर अब उसका भी कोई उपाय न था। सावित्री उस रात सो भी न सकी। और शायद अनिल भी नहीं।

अन्तर केवल इतना था कि सावित्री चुन्नी की बगल में बिस्तर पर पड़ी सिसकती रही। खिसक कर अपने बिस्तर पर

जाने की हिम्मत भी उसमें न थी। उधर अनिल बिस्तर पर लेटा ही नहीं, छत पर सारी रात टहलता ही रहा। थक कर सुबह चार बजे अनिल चारपाई पर तिरछा ही गिर पड़ा, उसे कब नींद आ गई, सो उसे स्वयं भी जान न पड़ा। उधर सावित्री साढ़े चार बजे उठ कर सास के चरण छूने चली गई। चुन्नी अकेली ही उस घर में उस रात साढ़े नौ से सुबह सात बजे तक प्रगाढ़ निद्रा में अचेत पड़ी रही। लाल आँखें लिये अनिल आठ बजे सोकर उठा, किन्तु उसे क्या मालूम था, कि एक और व्यक्ति भी उसके साथ ही साथ सारी रात जागता रहा है; लेकिन सुबह चार घंटे भी नहीं सो पाया है। अलसाया-सा शरीर लेकर सावित्री घर के काम में जुट पड़ी, पर जी उचाट ही रहा।

(ix) Naya Khel

नया खेल

"चुन्नी, तू डर गई थी क्या ?"

"क्यों नीलू भइया, डरती क्यों ?"

"देख चुन्नी, तू मुझे भइया न कहा कर।"

"तब क्या कहा करूँ ?"

"अनिल।"

"सो क्या अच्छा लगेगा ?"

"खूब लगेगा ?"

"पर सब के सामने कैसे कहूँगी।"

"अच्छा, तब कुछ भी न कहा कर।" कह कर स्वयं चरित्राभिमानी अनिल झेंप गया।

कुछ देर तक दोनों साइकिलों पर चुपचाप चले जा रहे थे। मरघट के पास से निकल कर किलेवाली खुली सड़क पर पहुँच गये थे। थोड़ी देर तक लज्जा और झेंप से चुप रह कर अनिल फिर बोला,—"चुन्नी, उस दिन तुमने जब नीली साड़ी पहनी थी तो तुम बहुत ही सुन्दर लग रही थीं। अरे, तुम्हारा लेम्प तो बुझ गया। तेल चुक गया क्या ?"

"हाँ, चलो, पैदल ही चले चलें, घर कुछ दूर तो रह ही नहीं गया है।" साइकिल से उतर कर चुन्नी ने कहा।

प्रसन्नतापूर्वक अनिल भी साइकिल से उतर पड़ा।

अनिल का पहला वाक्य नारी के हृदय में सम्पूर्ण रूप से हिलोरें ले उठा। रूप की प्रशंसा नारी के जीवन की सबसे अधिक प्रिय दुर्बलता है। युवावस्था में पग रखती हुई चुन्नी भी उससे बच न सकी।

"चुन्नी, तेरी एक फ़ोटो उस साड़ी में ले लूँ क्या ?"

"उसमें भी पूछने की आवश्यकता है ? कल सवेरे ही ले लेना। कल तो है भी इतवार। कालेज भी आना न होगा।"

"नहीं चुन्नी वहाँ नहीं, वह नदी-तट पर ही शोभा देगी। यमुना पर फ़ोटो लेने की आज्ञा दो।" अनिल ने दीनता से कहा।

"तब तो वही साड़ी पहन कर क्लब आना पड़ेगा। पर उससे खेला तो जायगा नहीं।" हँस कर चुन्नी बोली।

"तब न खेलना। कल थोड़ा घूम ही आयँगे।"

"अच्छा सो ही सही। पर मुझे भी फ़ोटो की एक कापी देनी होगी।" मचल कर चुन्नी बोली।

"ज़रूर, ज़रूर, जितनी इच्छा हो लो। पर मैं जिस पोज़ में कहूँ उसमें ही बैठना होगा।"

"यह शर्त मंजूर। और कोई शर्त ?"

"और क़ोई नहीं। यही क्या कम है ?"

कुछ सोच कर चुन्नी ने कहा।

"पर तुम मेरी फ़ोटो का करोगे क्या, नीलू भइया ?"

"फिर भइया ?"

"अच्छा नीलू बाबू।"

"बाबू भी नहीं केवल नीलू।"

"अच्छा, नीलू। पर क्या तुम मुझसे बड़े नहीं हो ?"

"नहीं।"

"अच्छा किस हिसाब से ?" कह कर चुन्नी खूब हँसी। हँसी थोड़ी थमने पर उसने फिर कहा—"और मेरा प्रश्न ?"

अनजाने ही अनिल कह उठा,—"पूजा करूँगा।"

चुन्नी ने आश्चर्य्य से कहा—"क्या ?"

अनिल सम्हल चुका था।

"अरी अलबम में लगाऊँगा और क्या करूँगा ? पगली है क्या ? लोग फ़ोटो का क्या करते हैं ? हाँ, तो तेरी नई प्रिंसिपल आ गई कि नहीं ?" बात बदलते हुए अनिल ने कहा। उसकी जिह्वा लड़खड़ा रही थी।

"हाँ, आगई हैं।"

"कौन आई ?"

"मिस नैयर हैं। कोई कहते हैं, कई विषयों में विशेष योग्यता रखती हैं। बड़ी हँसमुख हैं। आज हम सब लड़कियों को एड्रेस किया था। मुझे तो बड़ी ही अच्छी लगीं। खूब हँसती भी हैं। स्टाफ़ मेम्बर्ज़ से शायद कुछ मजाक भी कर रही थीं। कालेज की प्रीमियर से एक केबिनेट की मीटिंग बुलाने को कहती

थीं; उसमें फिर अच्छी तरह देखूँगी।"

"अच्छा, तो फिर कब तुम्हारी केबिनेट की मीटिंग होगी? वाह री तुम्हारी केबिनेट।" कह कर अनिल हँस पड़ा।

"वाह, हमारी कान्स्टीटयूशन बड़ी स्टाउंड है।" अप्रतिभ सी होकर चुन्नी ने कहा। अनिल की सारी कोशिशों के पश्चात् भी चुन्नी 'पूजा करूँगा' शब्द भुलाने पर भी नहीं भूल सकी। उसकी हृद-तन्त्री के समस्त तार एक साथ ही झंकृत हो उठे। तब! तब क्या यह भी मेरे जीवन का एक रोमान्स होगा। चुन्नी के जीवन में आज पहली ही बार रोमाञ्च हो आया। उसकी इच्छा अनजाने ही अनिल से कुछ और भी सुनने की हुई, पर प्रसंग बदल चुका था। नारी-सुलभ लज्जा ने फिर वह प्रसंग लाने ही नहीं दिया। मानो किसी ने उसका गला ही दबा लिया, पर कंजूस की निधि की भाँति वह शब्द उसने हृदय में छिपा रखा। निकाल फेंकने की इच्छा ही नहीं हुई। यहाँ तक कि घर पहुँचने पर जब सावित्री ने खाना खाने को कहा तो चुन्नी ने कह दिया कि भूख ही नहीं है।

"चुन्नी, थोड़ा-बहुत खालो, नहीं तो मैं भी पानी ही पीकर सो रहूँगी। कब से तुम्हारी बाट देख रही हूँ? नौ तो बज गये। आज बड़ी देर कर दी।"

"हाँ, देर तो कुछ हो गई, बहिन, पर जी ठीक नहीं है। कुछ भी खाने को जी नहीं करता।"

"सिर-दर्द है क्या?"

"हाँ !"

"चल फिर दबा दूँ ।"

"नहीं, दीदी दबाने की ज़रूरत ही नहीं। नींद आ रही है, सोने से ठीक हो जायगा। तुम जाओ, खा पी लो।" छुटकारा-सा पाने को चुन्नी ने कहा। सावित्री अप्रतिभ सी हो गई। चुपचाप अनिल को खाना परोसने रसोई में चली गई। चुन्नी ने कमरे में जाकर कपड़े बदले बिना ही, केवल पर्स फेंक कर बाहर छत पर जाकर चारपाई की शरण ली। दूसरी चारपाई भी पड़ी थी पर घर की पुरखिन अभी आई नहीं थी। अभी उन्हें रामायण भी तो सुननी थी। चुन्नी अनिल की कही हुई सारी बातों का विश्लेषण करने लगी। घूम-फिर कर उसे एक ही बात आकर हृदय के समीप ही विश्व के समस्त चिर प्रिय स्वरों में गूँजती हुई सुनाई दी और वह थी 'पूजा करूँगा।' समस्त मधुर भावनाओं को एक ही वाक्य में ढाल कर सृष्टि एक नवीन ही रूप से चुन्नी के प्रति सजीव हो उठी। भोली चुन्नी सोच भी न सकी कि यह पाप है अथवा पुण्य, पर यह मधुर अवश्य है। यह उसने समस्त हार्दिक शक्तियों से जान लिया।

(X) Sakhiyan

सखियाँ

"नलिनी, तुझे दिनोंदिन क्या होता जा रहा है ?"

"क्यों निम्मी ? कुछ भी तो नहीं।"

"नहीं, सो कह कर आज तेरा छुटकारा होने का नहीं। तू दिनोंदिन गम्भीर होती जा रही है। उस दिन मिसेज़ नीलमणि जब हँसी-हँसी में ही कह गई कि नलिनी तो आज कल भीगी बिल्ली बनी हुई है, तब भी तू अन्यमनस्क भाव से ब्लैकबोर्ड की ओर ही देखती रही। मुझे तो तब लड़कियों का हँसना बहुत ही बुरा लगा। पर तू तो जानती है, उत्तर देने की योग्यता ही मुझ में नहीं। आशा थी कि तू अवश्य करारा उत्तर देगी, तो भी तू वास्तव में ही भीगी बिल्ली बनी रही। याद है एक दिन तूने मिसेज़ नीलमणि को कितना तंग किया था। कोई घर के हालात ऐसे हैं क्या ?"

"नहीं, बहन उमर के साथ साथ गम्भीरता भी बढ़ती है। घटती नहीं।" उदास मुख से चुन्नी ने कहा।

"तब क्या कोई रोमान्स का आरम्भ है ? यह तो बड़ा ही अच्छा है। लेकिन बता तो सही, वह कौन सा भाग्यशाली है जिसे

चुन्नी जैसी लापरवाह लड़की का प्रेम प्राप्त हुआ ?"

"देख निम्मी तंग न कर। मैं स्वयं नहीं जानती वह कौन है। यह कोई रोमान्स भी नहीं है, केवल मन उदास रहता है। कुछ अच्छा ही नहीं लगता।

"या मन ही मन मिसरी घुल रही है ?"

"चल भाग, नहीं मार बैठूँगा।"

"भई वाह, अन्धे की दाद न फरियाद, अन्धा मार बैठेगा! क्या खूब लाऊँ अभी चिन्ता, वीणा आदि को बुला कर ? ठहर तो सही तू।"

"नहीं, नहीं ऐसा अन्धेर न कर। तेरा यह पीरियड फ्री है क्या ?"

"हाँ, और अगला भी, आज मिस गोलगप्पा छुट्टी पर हैं।" चुन्नी जानती थी कि सारी कक्षा ही गणित की अध्यापिका मिस गोलाङ्कर को गोलगप्पा ही कहती हैं।

"मैं भी फ्री हूँ। तब चल तेरे कमरे में चल कर बैठें।"

"वहाँ क्या कुछ रस-रहस्य की बातें होंगी। बता दे तो कुछ आशा ही लेकर चलूँ।"

"सो ही सही, चल, तेरी मिस गोलगप्पा की ही बातें सुन लूँगी।"

निर्मला झेंप कर चल दी। लड़कियाँ प्रायः निर्मला को गोल-गप्पा के नाम से छेड़ती थीं। वह गणित में अत्यन्त योग्य थी न ? सदा ही प्रथम आती थी, फिर भूले-भटके कभी कभी अपनी

सहेलियों से मिस गोलाङ्कर की प्रशंसा भी कर दिया करती थी। कालेज-जीवन में किसी लड़की को बना कर आनन्द मनाने के लिये इससे बढ़ कर और क्या चाहिए? चुन्नी ने भी वही करके निर्मला को झेंपा दिया। निर्मला चुन्नी की अभिन्न मित्र है। पिछले दो वर्ष दोनों सहपाठिनी रहीं। छुट्टियों में पत्र-व्यवहार भी सदा ही रहता था। निर्मला एक आज़ाद विचारों वाले आई. एम. एस. की पुत्री हैं। घर पर शिक्षिता माता और एक भाई और है। होस्टल में रह कर ही पढ़ती है। पिता की अत्यन्त लाड़ली लड़की है। पर आरम्भ से ही मितभाषिणी और लज्जालु है। कालेज-जीवन में उसकी एकमात्र सखी चुन्नी ही है। निर्मला की सगाई पिछले वर्ष ही हो चुकी थी। लड़का उसके पिता के मित्र का ही पुत्र था। लड़ाई से पूर्व ही योरुप जा कर अनेक डिगरियाँ ले आया था। और आजकल कुछ धन्धे-उद्योग की चिन्ता में था। निर्मला का विवाह आगामी शरद तक हो जायगा, यही तय था, पर निर्मला के आग्रह से तब तक के ही लिये उसे कालेज में भेज दिया गया। निर्मला ने लड़के को देखा है, उससे भेंट भी हुई है, साथ चाय भी पी है, और टेनिस भी खेली है। वर लम्बा-चौड़ा स्वस्थ युवक है। उसकी आँखों में एक तीव्र ज्योति है। वह मधुर भाषी और शिष्ठ है। निर्मला को पसन्द है। यह सब निर्मला ने स्वयं चुन्नी को अकेले में ले जाकर कहा था। चुन्नी ने भी बड़े आग्रह से सब कुछ सुना था। इधर कुछ दिनों से चुन्नी का भाव देख कर उसका भेद खुलवाने की निर्मलाने दृढ़ प्रतिज्ञा

ही की थी। निर्मला के पास क्यूबिकल कमरा था। अन्दर जाकर निर्मला ने किवाड़ बन्द कर लिये। उपद्रव की संभावना भी कम ही थी, क्योंकि प्रायः सब ही लड़कियाँ इस समय या तो क्लास में थीं और या अपनी सखियों के साथ अध्यापिकाओं के विषय में हास-परिहास, सिनेमा की अभिनेत्रियों की आलोचना, देश की वर्तमान समस्याएँ आदि सारे ही विषय लेकर पेड़ों-तले वहीं बैठी उलझ रही होंगी। होस्टल की ओर शायद ही कोई इस समय आती हो।

माँ की भेजी हुई चाकलेट और टाफ़ी लेकर निर्मला चुन्नी के पास ही पलंग पर आ बैठी। "ले, खा, माँ ने घर बनाई हैं।" निर्मला का स्वर शायद माँ की याद से गीला हो उठा।

चुन्नी की तनिक भी इच्छा खाने की न थी, पर अस्वीकार कर सकने योग्य क्षमता भी न थी। उसने बेमन से दो चार टाफ़ी उठा लीं।

"अब बता, चुन्नी बात क्या है ?"

अत्यन्त लाड़ से निर्मला कभी नलिनी सेठ को चुन्नी भी कहती थी। और चुन्नी तो उसे सदा ही निम्मो या निम्मी कहती थी।

"बताऊँ क्या, अभागी, तेरा सिर।"

"अच्छा सो ही बता, पर कहे रखती हूँ, आज बिना जाने तुझे गेट से बाहर पैर न रखने दूँगी।"

"तब मिसेज़ मेहता से कह आ कि मेरे रात के भोजन का भी प्रबन्ध कर रखें।"

"क्यों क्या तेरी बहिन जी ने भोजन देना बन्द कर दिया है?"

बहिन की याद से चुन्नी सिर से पैर तक काँप उठी। उसका समस्त शरीर थर्रा उठा। कितनी उच्चाशया है सावित्री और कितनी नीच स्वयं चुन्नी! सावित्री हृदय खोलकर उसे सर्वस्व की अधिकारिणी बनाये दे रही हैं और चुन्नी उसी की निधि चुराने को फिर रही है। चुन्नी को पहलेपहल जिस दिन इस सत्य का भास हुआ, उसी दिन उसने भोली बालिका से एक दम समझदार रमणी के पद पर आरूढ़ होकर निश्चय कर लिया कि वह किसी दिन भी प्रेममयी सावित्री का सर्वनाश न कर सकेगी। पर अनिल की तर्कना, उसकी मीठी बातें, उसकी दीनताभरी दृष्टि भी चुन्नी का पीछा न छोड़ती थी। बातचीत में ही एक दिन अनिल ने कहा था,—"विवाह वेदी के तीन-चार चक्करों का नाम नहीं है। हृदय का आदान-प्रदान ही विवाह है, और वह सोच-समझ की वस्तु नहीं, केवल लाचारी है। हृदय का सौदा न बुद्धि से सलाह लेता ही है और न उसकी सलाह मानता ही है। मनुष्य को पूरा पूरा अधिकार है कि वह समाज के कृत्रिम बन्धनों को तोड़ कर सच्चा विवाह करे। और जिसके साथ कभी हृदय का आदान-प्रदान ही नहीं हुआ वह स्वतन्त्र है। अविवाहित है। उसे अधिकार है कि वह कहीं भी सच्चे अर्थों में विवाह कर बैठे।" चुन्नी ने क्या उत्तर दिया था सो तो उसे याद नहीं, किन्तु यह तर्क बार बार उसके हृदय को मथ डालता था। बुद्धि को चकरा देता था।

उसकी इच्छा होती कि वह भी क्यों न गा उठे,—

"फिर क्यों न करूँ प्यार, उन्हें क्यों न करूँ प्यार ?
नस नस में प्रीति छाई, फिर क्यों न करूँ प्यार उन्हें ?"

लेकिन अज्ञात रूप से कोई आकर कण्ठ पकड़ लेता। इसी अदृश्य व्यथा से परित्राण पाने के लिये युवती चुन्नी अपने आप को कठोर निर्वासन दण्ड देकर कालिज से पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर घर चली गई। उसकी इच्छा फिर इस कालेज में आने की न थी। उसका पूरा विश्वास था कि वह अपने हृदय को भस्मीभूत होते देख कर भी बहिन का अनिष्ट न करेगी। किन्तु विधाता ऊपर बैठा व्यंग की हँसी हँस रहा था। चुन्नी घर जाकर भी रह न सकी। अनिल ने धीरे-धीरे उसके हृदय के प्रत्येक अंश में गरल भर दिया था। चुन्नी इच्छा करने पर भी, ज्ञान होने पर भी यत्न करने पर भी, उसके विष से बच न सकी। अनिल के बिना उसका रहना कठिन हो गया। उधर अनिल के पत्र भी प्रतिदिन ही आते थे—आँसुओं से तर, वेदना से लिपे-पुते। चुन्नी लाचार हो गई। उसे देहली आना ही पड़ा और इस बार जीत अनिल की थी। अनिल उससे लाभ भी उठाना चाहता था। उसने विवेक-शक्ति को तिलाञ्जलि दे दी थी। चुन्नी भी अब सावित्री से खुलकर मिल नहीं पाती। सावित्री भी कुछ अनुमान करती हुई भी विश्वास नहीं कर पाती। भोली चुन्नी और देवता-स्वरूप स्वामी पर अविश्वास कर सकने योग्य उसकी क्षमता नहीं। इधर माँजी की भी चुन्नी पर कुछ विशेष कृपा-दृष्टि नहीं है। घर नरक-तुल्य हो रहा है। केवल अनिल ही अपना अभिनय सफलतापर्वक पूरा कर रहा है।

सावित्री भी सारे घर को अभी तक एक सूत्र में बाँधे हुए है।

ज्वालामुखी फटने ही वाला है। चुन्नी बड़ी ही अव्यवस्थित चिन्तापूर्ण दशा में समय व्यतीत कर रही है। माँ जी और सावित्री की करुण दृष्टि न सह सकने पर भी अनिल को छोड़ देने की शक्ति उस दुर्बल रमणी में रही नहीं है। मन की कठोरता सह सकने योग्य सहन-शक्ति वह कहाँ से लाय ? कोमल बाला ? हृदय के भावों को घोंट रखने योग्य भी शक्ति अब उसमें रही नहीं। निर्मला की सहानुभूति ने चुन्नी के हृदय की प्यास और भी जगा दी। कुछ देर तक खिड़की से बाहर आकाश के शून्य बिन्दु पर ताकते रहने के पश्चात् अचानक निर्मला की गोदी में गिर कर रोने लगी। निर्मला घबरा गई। उसका यह पहला ही अनुभव था। पिछले दो वर्ष के जीवन में उसने चुन्नी की अद्भुत शरारतें देखी थीं, चुहलबाज़ी और छेड़छाड़ भी देखी थी। स्वाभाविक तेज बुद्धि और प्रतिभा भी देखी थी, किन्तु उसके व्यक्तित्व की इस करुण कहानी से वह परिचित न थी। उसकी कल्पना से भी बाहर था चुन्नी का दीनता पूर्वक रोना। उसने अनुमान किया था कि चुन्नी अपनी कहानी स्वयं ही हँसते हँसते सुना देगी। वह ऐसी ही धातु की बनी हुई थी न ? किन्तु यह क्या ? यह दीन रमणी तो चुन्नी नहीं, कालेज की छात्रा समाज की जीवित, शरारती विद्यार्थिनियों की अगुआ नहीं। थोड़ी देर भौंचक्की सी रह कर निर्मला ने चुन्नी को प्यार से उठाना चाहा। पर चुन्नी उलटी पड़ी हुई निर्मला की गोद में ही रोती रही। अच्छी तरह

रो चुकने के बाद चुन्नी को निर्मला की ज़ोर-ज़बरदस्ती से उठ कर मुख धोना पड़ा। स्वस्थ होकर चुन्नी ने कहा—"निम्मी, तू नहीं जानती, तेरी चुन्नी ने बड़ा भारी पाप किया है।"

"चल पगली, पाप का लक्षण भी जानती है?"

"नहीं, निम्मी मैंने सचमुच अनजाने ही कुकर्म किया।" चुन्नी के आँसू सूखे न थे।

"चुन्नी, पागल न बन। खफ्ती तो तू है ही। और अगर पाप हो ही गया तो क्या अन्धेर हो गया। बहिन, पाप और पुण्य दोनों ही रिलेटिव—सम्बन्धित—शब्द हैं। किसी भी चीज़ को तुम पाप कहो या पुण्य, अपने अपने स्टैन्डर्ड के अनुसार वही हो जायेगा। निराश न हो, रानी।" बड़े प्रेम से निर्मला ने कहा।

चुन्नी ने स्वस्थ होकर कहा—"निम्मी, बहिन ने वास्तव में मुझे छोटी बहिन समझ कर ही अपनाया।" निर्मला की भी सावित्री पर सहज ही भक्ति थी। उसकी मिलने वालों की लिस्ट में नलिनी के घर की भी बात लिखी थी। अक्सर शनिवार को चुन्नी के घर जाकर सावित्री की सेवा निसंकोच भाव से ग्रहण कर निर्मला ने उस पर भक्ति करना सीख लिया था।

"हाँ, फिर।" अनिश्चित स्वर से निर्मला ने कहा। स्वर कुछ भययुक्त था।

"उन्हीं का सर्वनाश होने की संभावना है मुझ से, निम्मी। मुझे संसार में कौन क्षमा करेगा? बहिन!" स्वर काँप रहा था। जिह्वा लड़खड़ा रही थी। आँखें नीची थीं। आज वह स्वयं अपनी

दृष्टि में छोटी हुई जा रही थी। बहुत ही छोटी, बहुत ही तुच्छ।

"तब, तब क्या अभागी तू अनिल कुमार से ही प्रेम करने लगी है?"

चुन्नी चुप ही रही। कुछ देर सोच कर निर्मला ने कहा,— "सम्भल जा, चुन्नी। संयम बड़ी वस्तु है। अभी से इस नये खेल से हाथ खींच ले।"

"अब बहुत दूर आ चुकी हूँ, निम्मी।"

"नहीं, चुन्नी सो नहीं होगा। तू कालेज छोड़ कर घर चली जा। तेरे चाचा शीघ्र ही तेरा विवाह कोई योग्य लड़का देख कर कर देंगे।" समझाने के स्वर में निर्मला ने कहा।

"मैं विवाह नहीं करूँगी, निर्मला। एक ग़लती तो कर चुकी हूँ दूसरी फिर न कर सकूँगी।"

"तब गले में पत्थर बाँध कर यमुना का ही आश्रय ले।" चिढ़ कर निर्मला ने कहा।

"बहिन, वह भी मेरे बस की बात नहीं।"

दीनता से चुन्नी ने कहा। चुन्नी के स्वभाव-विरुद्ध दीनता पर निर्मला को दया हो आई। "अभागी।"

थोड़ी देर सन्नाटा रहा।

"निम्मी, बचपन में एक बार मैंने हवाई जहाज़ को उड़ते देखकर हवाई जहाज़ लेने की रट की थी। पिता अनेकानेक खिलौने देकर भी मुझे संतोष न दे सके थे, अतः पिता जी ने स्वयं देहली ऐरोडरोम आकर मुझे हवाई जहाज़ में चढ़ाया। फिर भी मेरा

सन्तोष न हो सका। मैं हवाई जहाज़ लेना चाहती थी, जो, उनकी शक्ति से बाहर था। उन्होंने मुझे डरावा दिलाया कि इस पर से गिर पड़ते हैं, चोट आ जाती है। किन्तु मैं और ही धातु की बनी हुई थी। न मानी और न मानी। फिर जब हमारे बूढ़े नौकर ने खड़े हुए हवाई जहाज़ से मुझे धक्का दे दिया, थोड़े घुटने आदि कुछ फूट गये, तब मैं सन्तुष्ट हुई। निम्मी, मेरा मन मेरे वश से बाहर है। सावित्री बहिन को मैं अत्यन्त प्रेम करती हूँ। उनका अनिष्ठ करने की मेरी इच्छा नहीं। मैं सारे उपाय भी करके हार गई हूँ। इसीलिये कालेज से छुट्टी लेकर घर भी रह आई कि उन्हें भूल सकूँ, पर हम दोनों में से कोई भी एक दूसरे को भुला न सका। अब और उपाय ही क्या है? जीवन यों ही बिताना पड़ेगा।"

चुन्नी फिर रो पड़ी।

"तब शीघ्र ही मुख काला कर, चुन्नी, किन्तु यह कहे देती हूँ, कि तू शीघ्र ही उससे विवाह करके बन्धन में बँध जा। देर तक ऐसे खेल खेलना ठीक नहीं।"

"पर यह कैसे हो सकता है निम्मी, सावित्री बहिन के सामने तो यह हो न सकेगा।"

"पर न होना और भी भयानक होगा, चुन्नी।" कुछ डर कर दृढ़ता से निम्मी ने कहा।

"परिस्थितियों पर मेरा वश नहीं, निम्मी, जो होगा सो ठीक ही होगा। मैं इसमें कुछ भी कर न सकूँगी। पहले भी सब कुछ अपने आप ही होता गया है। भविष्य में भी वैसे ही होगा। पर तू

भी मुझ से घृणा करेगी, निम्मी।" बहुत ही निराश स्वर में चुन्नी बोली। "सो तो यदि उचित समझेगी तो सावित्री बहिन करेंगी। चुन्नो, मैं तो तुझ पर सहज प्रेम छोड़ कर घृणा किसी दिन भी न कर सकूँगी।" चुन्नी की पलकों के नीचे फिर दो बूँदें इकट्ठी हो गईं। उस दिन शनिवार था। मिसेज़ महता से आज्ञा लेकर हठ करके निर्मला भी कालेज समाप्त होने पर चुन्नी के साथ ही घर चली गई। रास्ते भर दोनों सखियाँ चुपचाप हो गईं। कुछ और लड़कियाँ बस में बैठी चुहल कर रही थीं। कुछ चुन्नी को भी छेड़ रही थीं। निर्मला इन हमलों में बराबर ही चुन्नी की रक्षा कर रही थी। अतः चोटें चुन्नी को छोड़ कर निम्मी पर ही पड़ने लगीं। निम्मी भी हँस कर उत्तर देती रही।

सावित्री चुन्नी की प्रतीक्षा में रसोई में आटा लिये बैठी थी। मुख पर विश्वास की ज्योति और मन की पवित्रता छाई हुई थी। कुछ सैकेण्ड एकटक देखती हुई निम्मी एक दम चप्पल उतार कर रसोई में घुस गई। उसके हाथ की दसों सुन्दर अँगुलियाँ चमकते हुए नगों की अँगूठियों-सहित सावित्री के बिछुएधारी चरणों पर एक ही जगह में थीं।

सावित्री इस अचानक हमले से घबरा सी गई। निर्मला के हाथ पकड़ते हुए उसने बड़े ही स्नेह-स्निग्ध स्वर में कहा,—"अरी निम्मी तू कब आई? यह क्या तमाशा करती है? कहीं बहिनों के भी पैर छुए जाते हैं? पगली।"

सावित्री के हाथों से अपने हाथ न छुड़ाकर निर्मला ने कहा,—

"जीजी, आज तुम्हारे महावर-चर्चित चरण छूने का लोभ मैं संवरण ही न कर सकी। क्षमा करो।"

चुन्नी चुपचाप रसोई के द्वार पर खड़ी थी। उसने सावित्री को आज दस दिन बाद नजर भर कर देखा था। उससे सावित्री की ओर देखा ही नहीं जाता था। गम्भीर परिस्थिति को हलका करते हुए सावित्री ने कहा—"चुन्नी, एक थाली तो उठा ले। तुम दोनों बैठ जाओ। महरा को बुला ले, पानी धर दे और अचार भी निकाल दे।

चकले की रोटी तवे पर जा चुकी थी। निर्मला एकटक इस कुरूप रमणी के महान हृदय को भाँप रही थी।

(xi) Ant

अन्त

"चुन्नी, तुम मेरा साथ दोगी ?"

"नहीं।"

"तब फिर मैं निराश हो जाऊँ ?"

"हाँ।"

"देखो, सोच-विचार कर कहो, चुन्नी, फिर सम्हालना हमारे वश की बात न होगी।"

"देखा जायगा।" चुन्नी का हृदय रुलाई से भरा आ रहा था। जमे हुए आँसू निकालने के लिये उसका बाहर जाना आवश्यक था। पर द्वार पर ही तो अनिल खड़ा था। उसे लाँघ कर जाना भी चुन्नी के लिये सरल न था। पिछले दिनों घर की स्थिति कुछ अधिक बिगड़ गई थी। सीता सब कुछ देख-समझ कर भी निश्चय नहीं कर सकी थी। चुन्नी को घर भेजने का नाम लेते ही उनका एकमात्र पुत्र भी कहीं न कहीं जाने का प्रोग्राम बना लेता है। चुन्नो को होस्टल में करने के विचार पर अनिल भी होस्टल की तैयारी कर देता है। यह सब कुछ होते हुए भी सावित्री

निर्विकार है, स्थिर है, न चुन्नी पर क्रोध ही करती है और न अनिल से लड़ ही पाती है। यहाँ तक कि उसने उन दोनों से बोलना भी छोड़ दिया है। सीता सब कुछ जानते हुए भी अनिल को दोष नहीं दे पाती। चुन्नी पर तो उसका क्रोध है ही। सबसे अधिक अप्रसन्न वह सावित्री से है। विवाहिता पत्नी को क्या इतना लापरवाह होना चाहिये। सीता ने अनिला को भी बुला कर सलाह की।

अनिला ने सावित्री से कहा,—"भाभी, स्वेच्छा से अपना नारीत्व का दावा किसलिये खो रही हो? जानती नहीं, एक बार खोकर फिर कभी पा न सकोगी। और यही नारी का एकमात्र आश्रय है जो फिर लाख सर पटकने पर भी न मिलेगा।"

सावित्री की इच्छा हुई कि हँस कर कह दे,—"तुम्हारी कुरूप भाभी को काली होने के अपराध में वह दावा, वह आश्रय, नारी का एकमात्र आनन्द मिला ही कब था? मेरी रानी बहिन।" पर आज सब कुछ खोकर भी मानिनी नारी अपनी लज्जा की सबसे कठिन, अत्यन्त करुण कहानी स्वयं न कह सकी। उसे चुप देख कर अनिला कुछ झुँझला उठी,—"अगर यही खेल देखने की इच्छा है, तो देखो भाभी, फिर कभी तुम्हें बिना बुलाये सलाह देने न आऊँगी।" कहकर अनिला उठ खड़ी हुई। प्रबल इच्छा रहते हुए भी सावित्री पैर पड़ कर अनिला को समझा न सकी। पत्थर की तरह चुप ही बैठी रही। न जाने कब तक बैठी रही। दूसरे ही दिन वृद्ध मुंशी जी को साथ लेकर घर से सारा सम्बन्ध तोड़ कर गृहिणी सीता काशी की ओर चल दी।

जाते समय अनिल ने कहा—"माँ, इच्छा होती है तो दो चार मास काशी रह आओ। फिर अपने घर आ जाना। तुम्हारे बिना मुझे तो घर ज़रा भी अच्छा न लगेगा।"

सीता ने भारी मन से कहा,—"सो दिन अब रहे नहीं, बेटा। अब घर आने की इच्छा भी नहीं। विश्वनाथ बाबा अपने चरणों में स्थान दे दें, यही बहुत है। जन्म भर बहुत दुःख-सुख देखे। अब और कुछ भी देखने की इच्छा नहीं।"

कह कर भारी मान से चुप हो रहीं। कुछ ठहर कर पुरखिन ने फिर कहा—"बेटा, और चाहे जो करियो। बहू पर अत्याचार कभी भी न करियो। यही घर की लक्ष्मी है, इसका अपमान करके तेरा कभी भी भला न होगा। यही माँ का आशीर्वाद समझले।"

अनिल ने उत्तर नहीं दिया। चुपचाप माँ को स्टेशन तक छोड़ने चला। माँ का मन और भी भारी हो चला। माँ सदा के लिये जा रही है और पुत्र ने काशी तक जाकर व्यवस्था देख आने का आग्रह भी प्रकट न किया। क्षोभ से सब कुछ त्याग कर भगवान की शरण में जाती हुई भी सीता का मन रो उठा।

सावित्री ने रोकर कहा,—"माँ मुझे भी ले चलो। मैं भी काशी ही में तुम्हारी सेवा करूँगी।"

"तुम्हारा कर्तव्य यहाँ ही है। और जो नारी घर में न स्थान रख सकी, बाबा विश्वनाथ भी उसकी क्या व्यवस्था करेंगे? अब जाते समय अधिक न जलाओ बहू।"

चिढ़ कर सास ने कहा। सावित्री चुपचाप चरण छूकर एक

और खड़ी हो गई। उसकी आँखों के आँसू कब तक सूख सकेंगे, कौन जानता है? चुन्नी सवेरे ही साधारण प्रणाम करके कालेज चली गई थी। सीता ने केवल यही कहा,—"खुश रहो, बेटी।" लेकिन शब्द न जाने हृदय से भी निकले थे या केवल जिह्वा से ही।

सावित्री की इस प्रकार अनिच्छा और बलपूर्वक बिदाई देख कर अनिल और वृद्ध मुंशी दोनों ही की आँखों में आँसू भर आये। अनिल की इच्छा हुई कि इस वैधव्य के एक मात्र सहारे पर जीवन बितानेवाली माँ के चरणों पर सिर रखकर कह दे,—"माँ, मैं तुम्हारा ही हूँ, केवल तुम्हारा ही। तुम आज्ञा दो तो मैं सारे संसार को भी त्याग दूँगा। चुन्नी की तो बात ही क्या?" किन्तु चुन्नी का नाम मन में लेते ही एक निष्कपट सुन्दरी नारी-मूर्ति अनिल के सम्मुख घूम गई। वह दुर्बल हो गया। गुरु संकल्प दबे के दबे ही रह गये।

माँ को बिदा करने के पश्चात् अनिल रात भर चुन्नी के साथ एक निश्चय करने की बात हो साहसपूर्वक दृढ़ करता रहा। प्रातः काल ही चुन्नी के कमरे में जाकर अनिल ने बातचीत की। चुन्नी का 'देखा जायगा' सुनकर अनिल कुछ सहम सा गया। पर तुरन्त ही सम्हल कर बोला,—"अच्छा, चुन्नी, फिर अंतिम बिदा।" चुन्नी इसके लिये तैय्यार न थी।

"क्यों? मेरे पीछे तुम सब क्यों बारी बारी से अपना पैतृक घर छोड़ रहे हो। मैं ही अनाथ हूँ? मैं ही यह घर छोड़ कर

चली जाती हूँ।" असंगत स्वर में जल्दी से कह कर चुन्नी अपने को रोक न सकी। मेज़ पर सिर रख कर चुपचाप रोने लगी। अनिल कुछ देर तक उसके लाल गालों पर ढलकते हुए मोती देखता रहा। संयम की हद हो चुकी थी। अनिल ने धीरे धीरे पास जाकर चुन्नी के आँसू अपने रूमाल से पोंछ डाले। पर आँसुओं का तो अन्त ही न था। चुन्नी शायद होश में भी न थी। गुच्छे के गुच्छे काले बालों को गाल पर से हटा कर अनिल चुन्नी का सिर थपथपाता रहा, आँसू भी पोंछ रहा था। अनिल धीरे धीरे कुछ झुक सा गया। उसने एक दम चुन्नी के सुवासित तेल से सुगन्धित ढेर से बिखरे हुए बालों पर स्नेह-चुम्बन अंकित कर दिया। चुन्नी और अनिल दोनों में से कोई भी जान ही न पाया कि सावित्री उसी समय खुले द्वार पर अपने भाई के आने की सूचना देने के लिये खड़ी थी। सावित्री उलटे पाँव लौट गई। भइया राखी बँधवाने आया था। सावित्री की मायके जाने की कुछ भी बात न थी। फिर भी न जाने क्यों सावित्री ने खाने-पीने के बाद, जब चुन्नी कालेज में थी, अनिल के द्वार पर तीन मास बाद पैर रखे। अनिल ने स्थिर चित्त से कहा—"आओ।" वह समझ ही नहीं पा रहा था कि आज सावित्री क्यों आई है।

"भइया सुबह आये थे, राखी बँधवाने। आपको अवकाश नहीं था, इसी से मिल न सके। मैं उनके साथ एक बार घर ज़ाना चाहती हूँ।

"क्या माँ के बाद यह घर तुम्हारे रहने योग्य ही नहीं रहा, साबित्री ?"

इच्छा हुई कहदे, "नहीं।" पर वह भी कहकर कुछ भी दावा दिखाने की उसकी इच्छा आज सुबह ही मर चुकी थी।

"सो बात नहीं, घर जाने की इच्छा है। गये हुए दो वर्ष होने आये हैं।"

"अच्छा, तब चली जाओ।" घर में कोई भी बन्धन न होगा। सोच कर अनिल को हर्ष ही हुआ।

"शाम को जाऊँगी।"

"अच्छा।" सावित्री दो-चार सैकेण्ड खड़ी रही, पर अनिल ने फिर कुछ भी न पूछा। सावित्री की बहुत इच्छा हुई कि एक बार एकान्त में उन गौर चरणों पर लोट कर जी भर कर रोले। पर नारी के अभिमान ने अभागिन की अन्तिम साध भी पूरी न होने दी। कल्पना-जगत में ही स्वामी के चरण छूकर सन्ध्या को अभागिन नारी ने पति-गृह से बिदा ली। संसार की कौनसी अभागिन नारी ने स्वामी के जीवित रहते द्वार से ऐसी बिदा पाई होगी। अनिल और चुन्नी दोनों ही स्टेशन तक छोड़ने आये, पर सावित्री ने चुन्नी से एक बात तक न की। भाई पुरुषों के दर्जे में बैठे थे। अनिल उन्हीं के पास था। सिगनल डाउन हो जाने पर अत्यन्त साहस करके चुन्नी ने सावित्री के दोनों हाथ पकड़ कर कहा—"दीदी, छोटी हूँ, आज तक बहुत अपराध किये हैं। वह क्षमा तो करती जाओ।"

"सो क्या फिर कभी नहीं करा सकोगी, चुन्नी?"

सावित्री को पूरी तरह पहचाननेवाली चुन्नी ने कहा,—"दीदी,

अब तुम इस घर में पग नहीं धरोगी, यह मैं निश्चय रूप से जानती हूँ। पर तुम्हारी क्षमा के बिना तुम्हारी छोटी बहिन चुन्नी का कल्याण न होगा। कभी न होगा और तुम्हें शान्ति भी न मिलेगी।"

सावित्री ने आँखों के आँसू आँखों में ही पीकर कहा—"चुन्नी, मेरी तो तू छोटी बहिन ही है। जगन्नियन्ता से यही प्रार्थना करूँगी कि वह मेरे और तेरे सब अपराध क्षमा करें, फिर भी यदि तुझे इसी से सन्तोष हो तो मैं तेरे अपराध पहले ही क्षमा कर चुकी हूँ। सब कुछ तू ले ही चुकी थी। अब क्षमा भी ले लो। चुन्नी अब मेरे पास कुछ भी और नहीं रहा, बहिन।" सावित्री ने वेग से उठती हुई रुलाई को बड़ी कठिनाई से रोका। नीचे के ओठ पर दाँतों के अधिक दबाव से कुछ खून भी झलक आया।

ऐंजिन पहली सीटी दे चुका था।

"एक और प्रार्थना है, जीजी! तुम लौट आना।"

"आऊँगी।"

"कब?"

"मृत्यु से कुछ घड़ी पूर्व!"

"नहीं दीदी, तुम पहले ही आओगी। भगवान से कुछ कह सकने का मुख नहीं रहा, नहीं तो अवश्य कहती कि वह शीघ्र ही मुझे तुम्हारी छोटी बहिन, नहीं इतना बड़ा सौभाग्य नहीं, वरन् दासी बना कर अगला जन्म दें।" चुन्नी नीचे उतर गई। सावित्री को बड़ी इच्छा हुई कि स्वामी के अन्तिम दर्शन कर ले, पर भीगी आँखों ने उनके दर्शन सावित्री को करने नहीं दिये जो उसके

इसलोक और परलोक के स्वामी थे।

सावित्री के देहली छोड़ने के ठीक तीन मास बाद उसी तिथि को उसे हिन्दुस्तान टाईम्स द्वारा सूचना मिली कि अनिलकुमार पी. सी. एस. का विवाह कुमारी नलिनी सेठ के साथ सिविल मैरिज एक्ट के अनुसार कुशलपूर्वक होगया।"

समाचार सुनकर रोऊँ या हँसू सावित्री निश्चय न कर सकी, पर यदि कोई होस्टल के एकान्त कमरे में लेटी हुई निर्मला को देख लेता, तो निश्चयपूर्वक कह सकता कि वह उस रात बहुत रोई, जिस रात चुन्नी—उसकी अभिन्न हृदया चुन्नी—की सुहागरात थी।

(XII) Kartav-Path

कर्त्तव्य-पथ

"तब यह सच है क्या, सावी ?"

"क्या भाभी ?"

"यही जो सारा घर कह रहा है। जिसके लिए तुम्हारे भइया देहली जाकर दावा करने की बात कह रहे हैं। तुझे मालूम नहीं क्या ?"

"सच है भाभी।"

"तो यह नलिनी सेठ कौन है ?"

"मेरी छोटी बहिन।"

"छोटी बहिन ही मुँह काला करने को रह गई थी।" झुँझला कर भाभी ने कहा।

"सचमुच ही वह मेरी छोटी बहिन है। माँ के पेट से न होने पर भी मेरी बहिन है।"

"अभागी, तब तू जान-बूझ कर सर्वनाश-यज्ञ में अन्तिम आहुति देकर फल देखने यहाँ आन बिराजी है। रास्ते में यमुना में भी जल न था। अभागिन ! डूब क्यों न मरी। स्वामी से

अभिमान कर मायके आ बैठने की शिक्षा मैंने तो तुझे किसी दिन भी न दी थी।" सावित्री चुप ही रही। थोड़ी देर बक-झक कर भाभी ने फिर पूछा।

"तुझे सब मालूम था?"

"हाँ।" स्वर शान्त था।

"फिर वहीं प्रबन्ध न कर यहाँ क्यों आ मरी? और आई भी थी तो मुझ से कहा क्यों नहीं?" कहते कहते भी भाभी समझ रही थी कि स्वामी का इतना बड़ा दोष और अपमान, इतना अनादर कोई भी नारी अपने मुख से सहज ही न कह सकेगी।

बड़ी कठिनाई से सावित्री इतना ही कह पाई—"वह मेरी बहिन थी। उसका अनिष्ट जो होता, भाभी।"

"और अब उसका कल्याण हो गया न? अभागिन को पितरों का श्राद्ध करने को भी और कोई द्वार न मिला था। कुल-कलंकिनी कुल को भी ले डूबी और हमारा भी सर्वनाश करती गई।........."

आदि आदि। अधिक सुनने की सामर्थ्य न पाकर सावित्री चुपचाप पीठी उठा कर छत पर बड़ियाँ डालने चली गई, किन्तु आज उससे काम किया नहीं गया। किसी से बात-चीत भी नहीं कर सकी। रात को सब से छुपा कर उसने चुन्नी को पत्र लिखा।

"मेरी चुन्नी!" कुछ सोच कर सावित्री ने मेरी शब्द काट दिया। वह कुछ भी अधिकार रखना नहीं चाहती थी।

"यह अच्छा हुआ कि तुम्हारा विवाह हो गया। मेरी

भगवान के निकट यही प्रार्थना है कि तुम्हारे समस्त दोष-अपराधों को लिये-दिये ही इस संसार से चली जाऊँ। भगवान, तुम दोनों को अखण्ड सुख-ऐश्वर्य दें।" आँसुओं के प्रवाह ने बड़ी कठिनाई से पत्र पूरा होने दिया। यही उसका उस घर में पहला पत्र गया था।

चुन्नी पढ़ कर खूब रोई। उसने अनिल से कहा,—"देखो जीजी कितना विशाल हृदय रखती हैं!" अभागा अनिल भी आज एकाएक चौंक उठा। उसे जान पड़ा कि उसने अनुपम रत्न खो दिया, पर अब समझना दूसरी ग़लती थी।

(xiii) Prāyashitta

प्रायश्चित्त

"दीदी, जान पड़ता है संसार के सारे ही पापों का तुम्हें ही प्रायश्चित्त कर डालना होगा।"

"नहीं बहिन, अपने ही पापों का प्रायश्चित कर सकूँ तब ही शायद जीवन सुधर जाय।"

"दीदी, तुम्हारा जीवन यदि आदर्श नहीं है, सुधरा हुआ नहीं है, तो अखिल विश्व में भी शायद किसी का न होगा।"

"नहीं निम्मी, मानवीय हृदय की दुर्बलता सब ही के हृदय में एक समान जलती है। अन्तर केवल इतना है कि जिन्हें विश्व-नियन्ता ने उदार हृदय और सहन-शक्ति दी है, वे उस असह्य अभि-वेदना को सहनशीलता द्वारा मधुर बनाते रहते हैं। अन्य हम जैसे दुर्बल व्यक्ति तो केवल समय ही व्यतीत करते हैं।"

"किन्तु, दीदी, जो व्यक्ति केवल सब कुछ चुपचाप सहना ही जानता है, केवल दूसरों को देना ही जानता है, जिसने सब कुछ देकर भी लेना नहीं सीखा, वही क्या देवता नहीं है?"

"नहीं निम्मी, जिसने प्रसन्नता से कुछ भी नहीं दिया, वरन्

छीने जाने पर—लूटे जाने पर—चिल्ला कर रोया नहीं, वह देवता क्यों कर होगा ?"

"जाने दो, दीदी, अपनी छोटी बहिन के हृदय में अपनी भक्ति कम करने का यत्न व्यर्थ ही जायगा। मैंने रसोईघर में बैठी हुई तुम्हारी अन्नपूर्णा-मूर्ति भी देखी है और पिछले हैज़े के दिनों में अव्यर्थ सेवा और साधना की शक्ति भी देखी है, किन्तु मैं तो केवल एक ही रूप तुम्हारा देख सकी हूँ और वह है दातृरूप-सब कुछ देकर भी जो कुछ भी लेती नहीं उन्हीं की जाति की तुम हो, दीदी। तुम्हारी प्रशंसा नहीं करती, वरन् देवता की स्तुति से अपनी ही वाणी पवित्र करती हूँ।"

"लजाती क्यों हो निम्मी। पिछले जन्म के पापों का प्रायश्चित्त न जाने कब पूरा होगा !" कह कर डाक्टर साविश्रीदेवी एल. एम. पी. चुप हो गई।

इसी बीच सावित्री ने डाक्टरी की परीक्षा पास की थी पर अभागिन का भाग्य। इसी बीच उसकी स्नेहमयी भाभी तथा एक मात्र आश्रय पिता का भी देहान्त हो गया। परिचित व्यक्तियों के जीवन से दूर भागने के यत्न में सावित्री को एक बहाना ही मिल गया। सीतापुर के आस-पास हैज़े का प्रकोप हो रहा था। सावित्री ने अपनी प्रेक्टिस के लिये वही स्थान चुना। घर पर कोई मना करनेवाला तो था ही नहीं। सावित्री वहीं चली गई। निर्मला के पति की चीनी की फैक्टरी भी सीतापुर के पास ही मदौली में थी। विवाह के पश्चात् निर्मला भी मदौली ही चली आई। पिछले

हैज़े में सावित्री की निष्काम सेवा और परोपकार-वृत्ति मदौली वासियों से भी छिपी नहीं रही। इसीलिये पिछली बार निर्मला का सन्तान-प्रसव-काल उपस्थित होने पर सरकारी हस्पताल की डाक्टरनी को न बुलाकर सावित्री की ही बुलाहट हुई। रोगिणी के कमरे में घुसते ही डाक्टरनी और रोगिणी दोनों ने एक दूसरे को भली प्रकार पहचान लिया। तब ही से जब तब सावित्री निर्मला के पास आ जाती है। अवकाश पाते ही निर्मला भी सावित्री के पास चली जाती है। निर्मला अब भी कभी कभी एकान्त में चुन्नी को याद करके रो लेती है। चुन्नी भी अब इस सावित्री के छोने हुए पति को पाकर कुछ विशेष सुखी नहीं है। पिछले पत्र में उसने निर्मला को लिखा था।

"निम्मी, जीवन में जो अपराध किया था उसके दोष भोगने का आश्वासन स्वयं सावित्री दीदी देकर गई थीं, फिर भी जान पड़ता है, प्रायश्चित्त मुझे ही करना पड़ेगा। आज भी कहीं दीदी मिले तो उनके चरण पकड़ कर इस घर में उनकी स्थापना करूँ। सुना है उधर ही कहीं हैं? तुम खोज करना, मेरी बहिन। उनका स्वास्थ्य अच्छा ही है। मुन्नी तुम्हें याद करती है।"

उत्तर में जानबूझ कर निर्मला ने सावित्री का समाचार नहीं लिखा। उसे चुन्नी से तनिक भी सहानुभूति नहीं होती थी। उसके दुःख को उसका उचित दंड समझ कर ही निर्मला शान्त थी। सावित्री से भी उसने चुन्नी का हाल नहीं कहा। कौन जाने उसे दुःखी न करने के लिये अथवा वैसे ही? किन्तु वह देखती

थी कि परोपकाररत, सर्वस्वत्यागिनी, तपस्विनी सावित्री भी कुछ प्रसन्न नहीं है। उसके हृदय के भीतर मानो एक असह्य अग्नि निरन्तर धधका करती है, जो उसे शान्त होने ही नहीं देती। इस ज्वालामुखी को देख कर निर्मला दुःखी अवश्य हो जाती है किन्तु फिर सुख-सौभाग्य से भरे अपने जीवन के बीच उसे इस विषय में अधिक सोचने का अवकाश ही नहीं मिलता। इसी प्रकार निरन्तर दिन पर दिन और साल पर साल निकले जा रहे हैं। यही तो जीवन की कहानी है—सरल और सीधी।

(xiii) Prem Aur Grahast

प्रेम और गृहस्थ

"चुन्नी, मुझे घर के अतिरिक्त बाहर के भी बहुत कार्य करने होते हैं। यह ध्यान रखा करो।"

"यह मुझे मालूम है।"

"तब फिर क्यों मुझे बार बार आकर छेड़ती हो?" पक्के न्यायाधीश जैसी कठोर ध्वनि में अनिल ने कहा।

पिछले तीन चार दिन से चुन्नी अनिल से बोल नहीं रही थी। विचित्र है पुरुष स्वभाव! सावित्री से अनिल ऊब उठा, क्योंकि उसे आश्रय की आवश्यकता न थी। वृक्ष की घनी छाँह की तरह वह बहुतों को आश्रय में रख कर सुखी कर सकती थी। अपना भार किसी कन्धे पर डालने को वैसी व्यस्त नहीं जान पड़ती थी। तब अनिल को आवश्यकता हुई किसी बेल की, जो उसका आश्रय लेकर उसी की छाया में जीवन-यापन करे। ठीक ऐसी ही चुन्नी उसके जीवन में आई और उसे ग्रहण किया परिस्थितियों के विरुद्ध भी। किन्तु वह था बचपन, यौवन। आज सात साल बाद वही खिलखिलाता हुआ आश्रयी जीवन जब कन्धों पर भार डालता ही

जा रहा है तो अनिल घबरा उठा। उसमें भार उठाने की क्षमता ही न थी। बालपन से ही लाड़-प्यार के बीच रहा किसी दिन भी उसने गुरु भार उठाना सीखा ही न था। चुन्नी के अनभ्यस्त हाथों द्वारा सम्हली गृहस्थी देख कर अनिल चुन्नी से चिढ़ उठा। उसे मालूम हुआ मानो उसने एक बड़ी भारी भूल कर डाली, पर अब उपाय ही क्या था? अतः वह चुन्नी पर ही झल्लाने लगा। चुन्नी ने कभी किसी की आधी बात भी सहनी न सीखी थी। प्रेम की चिकनी-चुपड़ी बातें उसने अनिल से बहुत सुनी थीं, अब कुल-परिवार सब ही कहीं से अनादर की पात्र होकर, जब अनिल के निकट भी यथेष्ट आदर-प्यार न पा सकी, तो चुन्नी का सब से अधिक क्रोध बरसा अनिल पर। सद्भाव का विवाह के पहले ही दो वर्षों में अन्त हो गया। फिर भी गृहस्थी चल ही रही थी। सीता ने पुत्र से कुछ भी नाता रखना छोड़ ही दिया था। केवल मुंशी जी द्वारा कुशल कभी-कभी जान लिया करती थी। पुत्र ने भी माता की चिन्ता कभी नहीं की थी।

चुन्नी अब माता भी हो गई थी। उसके एक पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। बड़ी लड़की की अवस्था पाँच वर्ष की थी, छोटी अभी साल ही भर की थी। अनिलकुमार पी. सी. एस. एक सब डिवीज़न के एस. डी. ओ. हो गये थे। यहाँ आकर चुन्नी के दिन और भी बुरे कटने लगे थे। अनिल तो सुबह से शाम तक बाहर ही रहता था। चुन्नी बच्चों को लिये सारे दिन यही प्रतीक्षा करती थी कि सन्ध्या हो और जीवन का एक दिन कम हो। बच्चों का भी विशेष काम

P.C.S.

न था। एक मुण्डू था और एक आया। घर के काम भी प्रायः नौकरों पर छोड़ने पड़ते थे। उसे न तो रुचि ही थी और न अभ्यास। उपन्यास या अन्य किसी पुस्तक में भी जी न लगता था। विवाह के पश्चात् आया हुआ सावित्री का पत्र अब भी निकाल कर पढ़ लिया करती थी। उसने बहुत दिन हुए सावित्री को तीन-चार पत्र लिखे पर कोई भी उत्तर नहीं मिला। इस जंगल में निर्मला का पत्र कभी कभी आकर अमृत का काम करता था?

आस पास अन्य भी दो एक अफ़सरों की कोठियाँ हैं, किन्तु चुन्नी को उनके घर जाकर कसक ही प्राप्त होती है। अतः वह कम ही जाती है। तीन ही चार दिन पूर्व उसकी किसी विषय पर पति से कहा-सुनी हो चुकी थी। आज बहुत ही निश्चय करके मेल करने आई थी। छोटी मुन्नी बीमार जो है। क्या ऐसे समय भी पिता घर के कामों पर ध्यान नहीं देगा? यही सूचना देने आना क्या छेड़ना है? चुन्नी धक सी रह गई। द्वार पर खड़ी थी। अन्दर आकर एक कुर्सी पर बैठ गई। आज काफ़ी रंग की साड़ी में उसकी शोभा द्विगुणित हो रही थी। पर अनिल को ऊपर देखने का अवकाश नहीं हुआ।

चुन्नी ने बैठकर कहा,—"तुम्हें एक मिनिट भी मेरे लिए फ़ुरसत नहीं है।"

"कहो, क्या कहती हो?" झटक कर कलम फेंक कर अनिल कुर्सी पर सीधा तन कर बैठ गया।

चुन्नी से सम्हला नहीं गया। क्रोध में उठकर खड़ी होगई

"मैं सावित्री बहिन नहीं हूँ, जो तुम्हारा सब तरह का अत्याचार सह लूँगी।" चुन्नी के सर से पैर तक आग लग रही थी। विवाह के बाद पहली बार उसने सावित्री का नाम लिया।

उससे भी अधिक कड़ुवे कण्ठ से अनिल ने कहा,—"और उसका भी जीवन किसने नष्ट किया ?"

ओह इतना साहस ! माना मैंने ही तो किया है।

"हाँ, हाँ मैंने ही किया और तुम्हारा भी, किन्तु, धर्मराज, क्या आप मुझे न्यायाधीश के सर्वोच्च पद पर बैठ कर यह भी बता सकेंगे कि एक अनुभवहीन भोली बालिका का जीवन किसने नष्ट किया ? छुपे-छुपे उसके अज्ञान से लाभ उठा कर कौन उसे प्रेम का पाठ पढ़ाता रहा और अन्त में उसका सर्वस्व लूट कर अब कौन उसे अत्याचार से पीस डालना चाहता है ? मुझे इस सब की मीमांसा करने की आवश्यकता नहीं, किन्तु, तुम्हारी लड़की रोग-शय्या पर पड़ी सिसक रही है, यही कहने आई थी। इच्छा हो तो उसे देख-भाल लेना।"

कह कर तेजी से चुन्नी कमरे से बाहर चली गई। लड़की अपने कमरे में थी। आया पास बैठी थी। चुन्नी बच्चों के कमरे में न जाकर अपने ही कमरे में जाकर किवाड़ बन्द कर खूब रोई। उसने पहली ही बार आज पति के सम्मुख इतनी बातें कही थीं पर उसे उसका दुःख न था। दुःख इस बात का था कि उसने जान-समझ कर इस हृदयहीन मनुष्य के हाथों अपना सर्वस्व क्यों लुटाया ? उसकी इच्छा हुई कि उसी समय इस मनुष्य की घर-

गृहस्थी छोड़ कर चली जावे। वह इस घर के मालिक की विलास-सामग्री के अतिरिक्त और है ही क्या? स्वामी की कामुक वृत्ति उसे पूरी करनी ही पड़ेगी, ऐसा वह क्यों समझे। इच्छा होते हुए भी बच्चों के प्रेम ने गृह-त्याग का विचार चलने न दिया। मैंने इन बच्चों को अपने गर्भ से जन्म दिया है। इन पर तो मेरा पूरा पूरा अधिकार है। दुःखिनी चुन्नी ने सोचा। सावित्री का चुपचाप आँसूभरे बिदा लेना उसे रह रह कर याद आने लगा। शायद उसी का यह प्रायश्चित्त है, उसने सोचा।

चुन्नी के चले जाने के बाद अनिल ने सोचा 'ऊँह जाने दो' और काम में चित्त लगाना चाहा, पर रह रह कर सतरह वर्ष की चुन्नी के सुन्दर मुख का ध्यान आने लगा। मैंने ही तो सात वर्ष पूर्व इस भोली बालिका को इस पथ पर अग्रसर किया था। आज मेरी ही ओर से यह उपेक्षा क्यों? किन्तु वह मूर्ख है, अल्हड़ है, लेकिन तब तो मैं उसकी लापरवाह तबीयत पर ही रीझा था न? ओह मेरी बच्ची बीमार है। माँ का घबरा जाना स्वाभाविक है और चुन्नी का जी तो बड़ा कच्चा है। उसे सावित्री की बीमारी के पहले दिन वाली चुन्नी की घबराहट याद आ गई। काम काज परे कर अनिल ने बच्चों के कमरे में जाकर देखा। आया बैठी है। बच्ची तड़फ रही है। शरीर पर हाथ रख कर देखा ज्वर तीव्र था। चपरासी को डाक्टर के पास भेज कर अनिल ने इधर दृष्टि दौड़ाई। चुन्नी का कहीं पता न था। चुन्नी के कमरे पर जाकर देखा द्वार अन्दर से बन्द था। सिसकने का शब्द भी कान लगा कर सुनने पर सुनाई

देता था। अनिल का साहस द्वार खुलवाने का न हुआ, पर वह फिर दफ्तर के कमरे में न जा सका। बच्ची के पास ही जा बैठा। नन्हा-सा लाल फूल बुखार से और भी लाल हो रहा था। अनिल ने उसे उठा कर बड़ी ज़ोर से छाती से लगा लिया। छोटी सी लड़की ने नन्हा-सा हाथ पिता के होठों पर लगा दिया। अनिल बार बार उस हाथ को चूमने लगा। आया दूध बनाने गई हुई थी। उस दिन चुन्नी खाने के समय भी दिखाई न दी। आज तक झगड़े होने पर भी खाना दोनों साथ ही खाते थे। आज पूछने पर खान-सामा ने कह दिया—"मेम साहब ने कहा है हम खाना नहीं खायँगे। तबियत ठीक नहीं है। साहब खा लें।"

अनिल से भी उस दिन कुछ खाया नहीं गया। अदालत में भी मन न लगा।

उसी दिन सन्ध्या तक दो और घटनायें हुईं। एक तो यह कि मुन्नी का ज्वर कम हो गया और दूसरी यह कि अनिल और चुन्नी में फिर मेल हो गया। स्वयं अनिल ने बड़े प्यार से चुन्नी को मना लिया। आधी रात तक बातचीत करते करते दोनों सो रहे। ऐसी रात कोई चार महीने बाद उन्होंने आज बिताई।

(XIV) Nirvachan

निर्वाचन

"नहीं, महाराज मुझे निराश न करें। संसार में आज तक निराशा छोड़ और किसी भी वस्तु से मेरा परिचय हुआ ही नहीं है। आज आपके निकट आकर भी यदि यही पाऊँगी, तो फिर आशा पर शायद विश्वास ही नहीं कर पाऊँगी।"

"देवी, मनुष्य को गुरु बनना शोभा नहीं देता। और फिर कर्त्तव्य का मार्ग प्रत्येक मनुष्य का भिन्न-भिन्न होता है। अपने कर्त्तव्य का निर्वाचन ही मानव-जीवन का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है। देवी, 'महाजनाः येन गता स पन्था' जानकर चलने वाले संसार में बहुत होते हैं। किन्तु महाजनों के निर्धारित पथों से अपने अनुकूल पथ चुन लेना तो प्रत्येक व्यक्ति का अपना ही कर्त्तव्य होता है। गले में कण्ठी डाल कर शिष्या बन जाने पर ही कर्त्तव्य मिल जाता हो, सो बात नहीं।"

"तब महाराज, कर्त्तव्य का ही आदेश दें।"

"बहिन, तुम्हारा सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य इस भीषण संघर्ष-काल में देश-सेवा ही है। देश में वास्तविक मनुष्यों की कमी है, कार्य्य की नहीं। माँ की निकम्मी सन्तानें भोजन करना जानती हैं पर

पचाना नहीं। माँ को उन्हीं सन्तानों की आवश्यकता है जो पचा कर उसके शरीर को पुष्टि दे सकें। यही करने का यत्न करो। देवी!"

"क्या आपका कहना है कि समाज-सेवा करूँ। दरिद्रों को वस्त्र और भूखों के लिये अन्न की व्यवस्था करूँ?"

"नहीं देवी, सो तुम्हारे किये भी न हो सकेगा और मेरे भी नहीं। जिस शरीर में क्षय-रोग के कीटाणु घुस कर, जिसके एक फेफड़े को एक दम क्षीण ही कर चुके हैं, वहाँ पर फीवर-मिक्शचर, डायफेटिक मिक्शचर देने से घबराहट तो कम हो जायगी, सम्भवतः बुखार भी अस्थायी रूपसे उतर जाय, पर उसका असली मिक्शचर नहीं है, सो कदापि मत भूलना। तुम्हारे सारे डाक्टरी शास्त्र कहेंगे कि उसका इलाज उस क्षीण फेफड़े का कोलेप्स करना ही है, उसे एक दम निकाल कर बाहर फेंक देना है। वहाँ मरम्मत से काम चलेगा नहीं। शरीर में घुसे हुए रोग-कीटाणुओं के साथ आवश्यकता पड़ने पर शरीर के एक अंश को भी निर्दयता से फेंक देना होगा। यह मरम्मत नहीं है, देवी। यह है एक दम दूर करना। सो तुम कर नहीं सकोगी। तुम कहती थीं कि समाज-सुधार के कार्यों में तुम्हें शान्ति नहीं मिली। कभी मिलेगी भी नहीं। दो वर्ष पूर्व तुमने मुझ से कर्त्तव्य-पथ का निर्देश कराना चाहा था और मैंने कहा था—कर्म करो, परोपकार करो, देश-सेवा करो। आज दिन तक तुम उसी देश-सेवा को उद्देश्य मान कर समाज-सेवा में लगी रहीं, किंतु तुम्हारे हृदय की बढ़ती हुई अशान्ति रत्ती भर भी नहीं घटी।

क्यों ? क्योंकि यह कर्म नहीं, केवल मात्र धोखा है। मानव की वास्तविक सत्य मनोवृत्तियों का उपहास मात्र है, माँ। दुम हिलाता हुआ कुत्ता ज़बरदस्ती अधिकार धारण किये हुए स्वामी से पुरस्कार में यदि बजाय रोटी के टुकड़े के बेंत की चोट पाने पर विनय पूर्वक स्तुति करके कहे—'महाराज, आप चोट तो करेंगे ही, क्योंकि यह आपका अधिकार ही है, किन्तु चोट ज़रा धीरे करिये ताकि मैं फिर आपके सम्मुख कमर और पूँछ हिला सकूँ'—तो यह समाज-सुधार भले ही हो, सत्य नहीं होगा। सत्य नग्न होता है, खुला होता है। उसे आवरण की आवश्यकता नहीं होती। तुम ने दीनहीन व्यक्तियों के कष्ट देख कर कहा था—'महाराज, मैं इनके अन्न-वस्त्र का प्रवन्ध कर दूँ !' याद है मैंने कहा था—'कैसे करोगी माँ ?' तुमने हँस कर कहा था—'स्वामी जी, यह है भारतवर्ष। यहाँ दाता-दानियों की कमी नहीं। आज दिन भी भारतवासी चन्दा देने में कृपण नहीं हो गये हैं।" याद है माँ, मैंने खूब ज़ोर से हँस कर कहा था—'अवश्य करो।' तब आज तुम कहती हो कि तुम्हें शान्ति नहीं मिली। क्यों ? क्योंकि तुम सच्ची लगन से खड़ी हो और तुम्हारा दान-कार्य हज़ारों रुपये ख़र्च करने के पश्चात् भी भारत की दीनता का एक कण भी कम न कर सका। देवी, यह है मरम्मत। इसकी आवश्यकता वहाँ होती है, जहाँ स्वामी और अधिकृत वस्तु एक ही हो। जहाँ प्रजा का हित ही राजा का चरम् स्वार्थ हो। वहाँ तुम्हारी मरम्मत का कार्य उपयोगी नहीं, वरन् शक्ति का व्यर्थ ही ह्रास मात्र है।"

"तब फिर कुछ भी न कर सकने से तो यही करना अच्छा है, गुरुवर! मैं यह नहीं कहती हूँ कि जिनमें शक्ति है, वह देश के सर्वाङ्ग उद्धार के लिये यत्न न करें। करें, अवश्य करें! देश के भाग्य-विधाता उस यत्न में प्राणों की बाज़ी लगा दें, किन्तु जो वैसा नहीं कर सकते, उन्हें मरम्मत-कार्य ही करने दो।"

"अवश्य माँ, संन्यासी को शायद इससे अच्छी बात फिर सुनने को न मिलेगी। पर ये कार्य हैं उनके जिनके पिता पूँजीपति थे, जिन्होंने दुष्ट बहेलिये की सेवा-द्वारा ही पूँजी का अम्बार लगा लिया है। निश्चिन्त मन से उन्हीं के बाल-बच्चों को कहने दो कि हम आनरेरी, अवैतनिक समाज-सेवा का व्रत लेकर खड़े हुए हैं। देश उन्हें लीडर परदुःख-चिन्तक और परोपकारी जान कर पूजेगा। उसे पूजना ही पड़ेगा, किन्तु यदि कभी उनके हृदय के भीतर छोटी सी धड़कन होगी तो वह अवश्य जान लेंगे कि देश का उपकार असंख्य धन में से चाँदी के दो-चार फ़ालतू ठीकरे दरिद्रों की ओर फेंक देने से नहीं हो जायगा। वरन दरिद्र-नारायण की पूजा का अधिकारी भी वही हो सकेगा, जो स्वयं दीन है, स्वयं दरिद्र है। पूँजीपति के एकत्रित किये हुए धन, रिलीफ़ फ़एड के धनी मन्त्री, प्रधान और कार्यकर्ताओं के फेंके हुए टुकड़ों से देश का हित नहीं हो सकता। किन्तु प्रश्न तो यह है कि म्याऊँ का ठौर पकड़े कौन? धन की चमक के नीचे जिनके हृदय की सचाई दब चुकी उन से तो यह आशा ही व्यर्थ है। स्वयं भूखे रह कर जिसने रात व्यतीत नहीं की, उसके मुख से भूखों का करुण क्रन्दन चित्रित

होते हुए सुनने से बढ़ कर हास्यास्पद कोई बात मैंने तो आज तक नहीं सुनी। इन्हीं लीडरों के सहज चरण-चिन्हों पर चल कर संसार की सर्वोत्तम वस्तु स्वतन्त्रता, शान्ति और आत्म-तुष्टि चाहती हो, बहिन। पर जाओ, माँ की, देश की, स्वयं की सेवा तुम्हारे भाग्य में नहीं।"

"तब फिर क्या करना होगा, महाराज? दूसरों की सहायता, सेवा क्या उचित नहीं है?" सावित्री ने सरल दृष्टि से प्रश्न किया।

"अच्छी क्यों नहीं है, देवी? अवश्य अच्छी है, किन्तु उन के लिये जिनका कल्याण सत्य की ओर से आँख बंद करके ही चलने में है, जो छाती फाड़ कर काम करने वाले मज़दूर, किसान और ग़रीब को सदा यह कह कर ही, यह बतला कर ही जीवित रखना चाहते हैं कि तुम्हारा जीवन हमारी दया, हमारी समाज-सेवा और हमारी सहायता पर ही निर्भर है, जो स्वयं समाज-सेवी त्यागी-आदर्श होते हुए भी परिवार के समस्त सदस्यों का अन्याय पूर्ण धन घर की सब से सुरक्षित कोठरी में रख कर, उसमें से कुछ एक ठीकरे सुधार, दान और चन्दे के नाम पर बाहर दूसरों की वाहवाही लूटने के लिये फेंक देते हैं। किन्तु वह भी तो सौदा है। भला लाभकारी सौदा! बदले में उन्हें मिलता है समाज में सम्मान, आदर और सब से ऊपर लीडरी। समाज उनके चरण-चुंबन करता है। ग़रीब उन्हें आशीर्वाद देते हैं जल में ही जल उलीचने के लिये। यह क्या कुछ थोड़ा बदला है? किन्तु उद्गम, सत्य, वास्तविक इलाज को, वह जान-बूझ कर मुख पर लाने की

चेष्टा भी नहीं करते, और साहस भी नहीं। वैसा करने पर उन्हें अँधेरी काल-कोठरी में जो बंद होना पड़ेगा। सत्य बड़ा ही कष्टकर है और बड़ा ही कठोर। तुम्हारी रिलीफ़ सभा की प्रधाना ही उस दिन कह रही थीं—बहिनो, आप लोग फल खाना छोड़ दें, व्रत करना आरम्भ करें ताकि उन पैसों को आप भूखे प्राणियों के लिये दान कर सकें। इच्छा हुई थी कि उनसे चिल्ला कर पूछूँ, देवी, आप लोगों,—ऊँची श्रेणी के लोगों के अतिरिक्त फल खाने को मिलते ही कितने लोगों को हैं? भोजन भी सदा दोनों समय कितने भारतीय शान्ति-काल में भी पा सकते हैं? किन्तु यह सब जानने की न उन्हें इच्छा है और न आवश्यकता। बहिन इन सब उपायों से बढ़ कर जो उपाय है वह ही सत्य है, किन्तु उसका नग्न रूप कितना भयंकर है सो शायद सब नहीं समझ पाते। और जो समझ सकते हैं, वह जानकर भी समझना नहीं चाहते, समझने में उनकी हानि जो है।"

"किन्तु महाराज जो राजसी सुख-भोग त्याग कर समाज-सेवा में लगते हैं क्या उनका कुछ भी महत्व नहीं?"

"अवश्य है माँ, उसी महत्व के दावे पर तो वह सब की पूजा निस्संकोच भाव से ग्रहण कर लेते हैं। एक धनी का महल से कुछेक क्षण सिर निकाल कर सड़क पर अपनी मोटर से कुचले हुए प्राणी को पड़े देख लेना क्या धनी के लिये महत्व का विषय नहीं है? उसके सर में दर्द जो हो उठेगा। श्रीमानों का दरिद्रों के लिये सभाएँ बना कर उपकार-कार्य करना वास्तव में बड़ा ही मीठा

लगता है। दृश्य है भी बड़ा ही सुन्दर! एक सुन्दर सी कार में बैठे हुए व्यक्ति का दयार्द्र हृदय से सड़क के किनारे सर्दी से ठिठुर कर मरते हुए प्राणी की ओर एक शाल, जो शायद उसके पैरों पर पड़ी थी, या उसके कुत्ते के काम आती थी, फेंक देना सचमुच बड़ा लुभावना है। बड़ा ही सुन्दर दृश्य है। शायद इहलोक और परलोक दोनों में ही सद्गति देने वाला। ठीक है फिर यही करो, देवी। शान्ति अवश्य मिलेगी। शान्तिपूर्वक स्वस्थ शरीर से किसी रोगी की ओर देखकर उसे यह कह देने से ही कि—देख तू भी अच्छा हो जायगा—मैं तुझे अवश्य दवा की दो-चार बूँदें दे दूँगा-शायद वह अपने उपकारी का आभार मान सके।" संन्यासी की अवस्था पचास के लगभग ही होगी। स्वाभाविक तेज से उस के नेत्र दीप्तिमान हो उठे थे। लम्बे शरीर पर एक मात्र वस्त्र खद्दर का बना हुआ था। गेरुआ रङ्गा हुआ न था। पैरों की खड़ाउएँ भी शायद किसी मामूली लकड़ी को काट कर स्वयं ही पट्टी जोड़ कर बनाई हुई थीं। हैज़े के दिनों में सेवा-कार्य करते हुए ही यह महात्मा सावित्री को मिल गया था। सावित्री की निष्काम सेवा देख कर इसी व्यक्ति ने एक बार सावित्री के चरण छूकर कहा था—"माँ, अभी इसकी आवश्यकता नहीं है। तुम बैठो, इसका दाह कर्म हो जायगा।"

बात यों थी। कच्चा खेड़ा का चक्कर लगाती हुई सावित्री ने उस दिन तलैय्या के किनारे ही एक लाश सी पड़ी देखी। पास जाने पर जान पड़ा वह एक दस-बारह वर्ष का दुबला-पतला बालक

पड़ा हुआ था। हाथ-पैर सब क़ै और दस्त से भरे हुए थे। सावित्री ने झुक कर ताल के पानी से सब कुछ साफ़ तो किया, पर बालक का शरीर सर्दी से सिकुड़ता जा रहा था। बालक को गोदी में लेकर सावित्री पास वाले घर के द्वार पर गई। यह घर सुधार समिति की मन्त्रिणी का था। देखते ही मन्त्रिणी का आफ़ीसर भाई ज़ोर से चिल्ला उठा,—"बहिन यह सब सोशल सर्विस घर से बाहर ही रख। यहाँ इस बला का काम नहीं। बाल-बच्चों का घर है।" बालक—अर्द्धमृत बालक—को जगह न मिली। कहा जाता है कि वह जाति भ्रष्ट है। उसकी माँ किसी विधर्मी के साथ भाग गई थी।

बालक ने सावित्री को अधिक देर तक चिन्ता में नहीं डाला। उसकी गर्म गोदी में ही ठंडा हो गया। सावित्री की मातृ स्नेह प्लावित आँखों से लाश पर ही गिर-गिर कर बूंदें उसे स्नान कराने लगीं। कम्पाउंडर दूर खड़ी थी। उस ईसाई रमणी की भी आँखों में खारा जल भर आया। ब्राह्मण की सन्तान का अन्तिम दाह-कर्म करने के लिये भी डोम-चमार तक राज़ी न हुए। उसकी माँ पतिता जो थी। वह जातिभ्रष्ट थी। कौन जानता है उच्च वंश तथा धनी घरों में से कितनों की माताएँ सती-सावित्री नहीं होतीं। फिर भी बालक के शव को माँ के कर्म का दण्ड भोगना ही था। सब ओर से निराश होकर उस ठंडी रात में सावित्री ने अत्यन्त साहस से अपनी सहायिका से कहा,—"बहिन, चलो। उन वृक्षों के नीचे लकड़ी चुनकर यहीं हम इस नन्हें बच्चे का दाह-कर्म कर

दें। श्मशान तो जा न सकेंगे। कुछ दूर से आता हुआ लालटेन का प्रकाश समीप आ रहा था। इसी समय लालटेन तथा दो चार शिष्यों सहित इन्हीं स्वामी जी ने घटना जान कर सावित्री से वह शब्द कहे। सावित्री इस अप्रिय कर्म से छुट्टी पाकर बालक को उस सूर्य-तुल्य तेजस्वी सन्यासी की गोदी में देकर भूमिष्ट होगई। प्रणाम करने के पश्चात् सावित्री ने मन ही मन संन्यासी को गुरु मान लिया। तब ही से सावित्री संन्यासी से सदा ही दीक्षा देने का आग्रह करती है, पर सन्यासी अभी उस आग्रह की रक्षा नहीं कर पाते। फिर फिर समय समय पर सावित्री को गुरुवर के साथ वार्तालाप करके प्रसन्नता ही प्राप्त होती है। सतत साधना, तपस्या और सेवा के बाद भी सावित्री को शान्ति नहीं मिली। उसकी इच्छा है कि कर्म-पथ त्यागकर निश्चिन्त भाव से कुछ दिन भक्ति करूँ, किन्तु गुरुवर अनजाने ही उधर से उसकी वृत्ति हटाकर संसार-कर्म की ओर ही लगाना चाहते हैं। वह क्या चाहते हैं, वैसे तो कोई भी नहीं जानता, किन्तु कम से कम वह सावित्री का संसार से परे हट कर भगवद्-भजन करने का प्रस्ताव सदा टाल ही देते हैं। आज भी वैसा प्रसंग आने पर उन्होंने वह सब कुछ कह डाला।

"अच्छा, माँ तो मैं आज चल दिया।"

"गुरुवर, आज मेरी कुटी पर न पधारेंगे ?"

"नहीं देवी, फिर कभी सही, तब तक तुम अपने चित को स्थिर करो। गायत्री का जाप किया करो, देवी। जो मिलने का

नहीं उसकी चिन्ता करके मन अस्थिर क्यों करती हो? वह सुखी है। घरबार लेकर धन्य है। उसे लेकर अपने जीवन को कठिन न बनाओ। माँ, यह सदा याद रखना कि नारी-जीवन भी कोई तुच्छ वस्तु नहीं है। इसका चरम उद्देश्य केवल पुरुष की सेवा करना और उसकी विलास की सामग्री बनना ही नहीं है, वरन् सृष्टि के समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व भी उसके ही कन्धों पर है। जिन्हें तुम्हारी आवश्यकता नहीं, उन्हें भूल जाओ माँ, जिसे तुम्हारी आवश्यकता है उसकी ओर ध्यान दो"। सावित्री की पूर्व कथा संन्यासी सुन चुका था। कहते कहते संन्यासी उठ खड़ा हुआ। उसकी लम्बी देह भयंकर सी प्रतीत होती थी। अनशन ने शरीर को सुखा डाला था। पर मानसिक तेज अंग-अंग से छलकता था। वृद्धावस्था उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं पाई थी।

सावित्री ने भूमि पर पड़ कर प्रणाम किया।

"सन्तान माँ को क्या आशीर्वाद दे। तुम्हारा जीवन धन्य हो।" कह कर संन्यासी लम्बे डगों से चल दिया। सावित्री देर तक उसी पत्थर पर बैठी रही।

पूँजीपति

'देखो, यदि वह असहयोग भी करते हैं तो कुछ ग़लत नहीं करते। जिन्हें छः मास की कमाई पर साल व्यतीत करने को वाध्य किया जाय और यदि वे हाथ उठा कर एक बार कह दें कि हम ऐसा नहीं कर पाते, दिन भर भूखे रह कर केवल एक बार रात में ही इस सोलह रुपये मन गेहूँ के खाने से हमारा पेट नहीं भर पाता, तो कोई बड़ा भारी अपराध नहीं कर डालते।"

"तो मैं कब कहता हूँ कि अपराध कर रहे हैं। पर मैं भी तो मँहगाई अलाउन्स तीस प्रतिशत से अधिक नहीं दे सकता।"

"क्यों ? अभी तो पिछले ही वर्ष तुम्हें तेरह लाख का लाभ हुआ है। वेतन का ख़र्च तो केवल इसका एक भाग ही है। जब तुम्हारी आय तीन गुनी बढ़ी है तो इन ग़रीब मज़दूरों का वेतन दुगना ही कर दो।"

"तुम समझती तो हो नहीं, निर्मला। मैं अकेला तो सर्वेसर्वा हूँ नहीं। न हो तो तुम मिल्ज़ का काम सम्भालो। मैं ही घर का काम देख लूँगा।"

"इस से मैं डर तो जाऊँगी नहीं, भले ही कर देखो। फिर

भला कब से ?" हँसी का आवेग अञ्चल से दबाती हुई निर्मला ने पति के हाथ में पान का बीड़ा देकर कहा।

"अभी इसी समय से।" कई बार बात इसी तरह हँसी में उड़ गई थी। वातावरण में तुरन्त गम्भीरता लाते हुए निर्मला ने कहा—"देखो हँसी की बात नहीं। ग़रीबों की आहें मुझ से और सुनी नहीं जातीं। यहाँ भी बंगाल का दृश्य उपस्थित होने ही वाला है। पन्द्रह रुपये पाने वाले के लिये तुम्हारे तीस परसेन्ट से बनता ही क्या है। डरती हूँ कि तुम्हारे साथ असहयोग न करना पड़े।" यहाँ रोकती रोकती भी निर्मला की मुस्कराहट दब न सकी—"अन्यथा किसी दिन सब ज़ेवर-गहने बेच कर इन्हीं लोगों को बाँट दूँगी और तुम्हारे मिल के दरवाज़े पर धरना देने आ बैठूँगी। अब कह दिया है फिर यह न कहना कि बताया नहीं।"

"सो सब कुछ श्रीमती निम्मी देवी कर सकती हैं, यह तो मुझे मालूम है, और फिर आज कल गुरुआनी भी खूब मिली हैं।"

"गुरुआनी का मज़ाक करोगे तो सरकारी अदालत से दण्ड पाओगे। जानते नहीं, मैं उन्हें कितनी श्रद्धा करती हूँ। वह सच्ची पतिव्रता हैं।"

"हाँ, और तभी तुम्हें पति-पूजा की अच्छी शिक्षा दे रही हैं।"

"कुछ बुरा भी नहीं सिखा रहीं। पति को उचित रास्ते पर लाना पत्नी का स्वाभाविक धर्म है।"

"अच्छा ? कब से ?"

"हर बात में हँसी नहीं सुहाती। जाओ नहीं सुनते तो अब न बोलूँगी।" निम्मी ने चुपके से मुँह फेर लिया।

"भई, फिर तो हमें भी कुछ दिन जाकर सावित्री देवी की सेवकाई करनी पड़ेगी। नहीं तो शायद ठीक पतित्व भी न निभ सके।" मीठी मुस्कान से कुमार साहब कह गये।

"तो कर लो हर्ज ही क्या है ? तर जाओगे।" चुटकी सी लेते हुए निर्मला ने कहा।

अच्छा. यहाँ तक ?" बनावटी आश्चर्य कुमार के मुख पर खेल रहा था। पर निर्मला बातों में ही भूल न सकी। दूर पर उनका बड़ा लड़का बिल्लू खेल रहा था। उसके हृष्टपुष्ट अंग हवा में उछल रहे थे। उसी ओर संकेत करते हुए निर्मला ने कहा,—"वह तुम्हारा बच्चा है। स्वच्छ और आरोग्य। और इन दरिद्र मज़दूरों के झोंपड़ों में जाकर देखो, रोगी, दुर्बल और मृतप्राय बच्चे ! फिर उनकी तुलना करो इन से। वह ऐसे क्यों हुए ? इनके लिये आनन्द की सामग्री एकत्रित करने के लिये ही तो ? हमारे तुम्हारे शरीर का एक एक रक्त-विन्दु उन्होंने ही तो पोषित किया। वह तुम्हारे कलेजे के टुकड़े के लिये अपने बच्चों का स्वास्थ और आनन्द बलिदान करते हैं और तुम उस बलि के दान को बलपूर्वक ग्रहण करते हो। बड़े परिश्रम से गन्ने उगाने वाले किसान की झोंपड़ी भी देखी है, साहब ? मैंने भी परसों ही देखी थी। उफ़, रौरव नरक था। क्यों ? क्योंकि हम उन्हें लूट डालना चाहते हैं। डाकू भी लूटते समय मानव-भावनाएँ नहीं लूट पाता, किन्तु

हम लूटते समय उनका चरित्र, उनकी सद्भावनाएँ, उनकी शराफ़त सब कुछ अन्न के साथ ही चूस लेते हैं और फिर बदले में अपने बच्चों के लिये ढेर सारा धन और समस्त सञ्चित पाप-कर्म छोड़ जाते हैं। यह सब कुछ लेकर भी हम उन्हें तीस प्रतिशत मँहगाई अलाउन्स देकर दान-गौरव से फूले नहीं समाते। छीः !"

"खूब पति-उपासना हो रही है।" हँस कर कुमार ने कहा।

"सचमुच मैं नहीं जानती थी कि दीन की दीनता पर तुम इस प्रकार हँस सकते हो। तीन दिन तक उपवास रख कर चौथे दिन रूखी-सूखी रोटी खाकर भी यदि इसी प्रकार हँसी कर सको तो जानूं।"

निर्मला क्रोध से जल उठी। वह कहती ही चली गई—"वह तुमसे माँगते ही क्या हैं? साम्यवाद नहीं, अपने उचित अधिकार नहीं। जो सब कुछ उन्हें मिलना चाहिये वह तो उनमें से कुछ भी नहीं माँगते, केवल पचास प्रतिशत अलाउन्स ही तो माँगते हैं। वह भी तुम नहीं दे सकते। इस अनर्थ का फल किसे भोगना पड़ेगा? मेरे इन गुलाब से बच्चों को ही तो। सो मैं इन्हें यह पाप का अन्न खाने न दूँगी।" उत्तेजना से निर्मला के लाल लाल होंठ फड़कने लगे।

"क्या करोगी फिर?" कुमार गम्भीर हो गये।

"जो सब ग़रीब करते हैं, वही मैं भी करूँगी।" दृढ़ता से निर्मला ने कहा। वह दरिद्रता का नग्न नृत्य देख चुकी थी न। जो सिनेमा में नहीं दिखाया जाता, किसी कविता में नहीं लिखा जाता

कभी सुना भी नहीं जाता। ऐसा भयंकर दृश्य वह स्वयं देख कर आई थी, इन्हीं चर्म-चक्षुओं से। बटुआ खोल कर जब उसने चाँदी के कुछ टुकड़े देने चाहे थे, तो सावित्री ने रोक कर कहा था,—"बहिन, इन से कुछ न होगा। यह एक नहीं करोड़ों हैं, इनका असली इलाज यह नहीं। इससे कहीं अधिक कठोर हैं। इसका इलाज वह है जिसकी ओर प्रायः हमारा ध्यान ही नहीं जाता और जाकर भी क्या होगा। योग्य सर्जन के बिना क्षय युक्त फेफड़ा निकाल कर फेंका जा ही नहीं सकता। वही इसका इलाज है।" फिर भी उसने हड़ताल की माँग दिलवाने का पूरा निश्चय कर लिया था।

"मज़दूरी कर सकोगी? कभी की है?"

"आवश्यकता पड़ने पर सब कुछ कर सकूँगी पर दीनों का रक्त अपने हाथ से अपनी सन्तान के मुख में न दे सकूँगी। कभी भी नहीं दूँगी, दे सकूँगी ही नहीं।" निर्मला चुपचाप क्षितिज की ओर देखने लगी। कुमार चुपचाप इस सीधी-साधी तेजस्वी दीप्तिवती पत्नी की ओर देखने लगा। यही सब तो वह कालेज यूनीयन में कहा करता था, किन्तु समय आने पर स्वयं कर न सका। उस ने स्टेज पर खड़े होकर बहुत से व्याख्यान दिये थे। हर्षित हृदय से जीवन के आरम्भ में तालियों की ध्वनि भी सुनी थी किन्तु धीरे धीरे धन के नशे में डूबता गया, डूबता गया और डूब गया, सर से पाँव तक डूब गया। कहाँ गया वह आदर्शवाद! कहाँ जाता है हमारे देश देश के अधिकांश जोशीले छात्र-छात्राओं का

जीवन में आकर आदर्शवाद, जीवन-प्रभात का एक दृढ़ देश-सेवी जीवन-मध्यान्ह में ही पक्का व्यवसायी, पूँजीपति बन बैठा। ग़रीबों की माँग का भी उस पर असर नहीं पड़ता और विलास में पली हुई ग़रीबी से अपरिचित कैसी महान है यह नारी, जो एक ही दिन दीन का दुःख देख कर दूर से चन्द टुकड़े फेंक कर देने में ही अपना गौरव नहीं समझती। चंदे भी नहीं उगाहती। रिलीफ़ फण्ड की सभानेत्री भी नहीं बनती, वरन उस पाप-जन्य अन्न से सन्तान की मुक्ति के लिये मज़दूरनी भी बनने को तत्पर है! कुमार ने मन ही मन इस दिव्य नारी-मूर्त्ति को प्रणाम किया। मज़दूरों का नेतृत्व पूँजीपति कैसे कर सकेंगे? उसके लिये तो मज़दूर ही बनना पड़ेगा। किसान की पीड़ा की औषध लेख लिख कर, मन्त्री, प्रधान बन कर नहीं जानी जा सकती, वरन जानी जायेगी किसान बनकर ही। त्याग सौदा नहीं है और यदि है भी तो सौदा है कष्ट के बदले, यश के बदले में नहीं।

धीरे धीरे कुमार ने कहा—"निम्मी, लाभ का अपना हिस्सा मैं इस बार इन्हीं लोगों में बाँट दूँ?"

"यही तो तुम्हारे योग्य बात है। मैं तुम्हारी यों ही तो भक्ति नहीं करती, स्वामी। केवल लाभ ही नहीं, हमें इतने वेतन की भी आवश्यकता नहीं, जब तक और कुछ प्रबन्ध नहीं होता, हमारा गुज़ारा सौ रुपये में भली प्रकार हो जायगा तो वही पारिश्रमिक लेकर, बाकी एक हज़ार नौ सौ रुपये इन्हीं लोगों के लिये लगा दो।" पत्नी ने गाढ़ी श्रद्धा से पति की ओर देखा।

"फिर आधे से अधिक नौकर हटाने पड़ेंगे।"

"कोई हर्ज नहीं, तुम उन्हें मिल में नौकरी दे दो, मुझे घर पर उतनी भीड़ की आवश्यकता भी नहीं।"

"बच्चों को कष्ट होगा।"

"नहीं, उनकी माँ उन्हें पालने की योग्यता रखती है।"

"तुम कितनी महान हो निम्मी।" कुमार की पलकों के नीचे खारे पानी की बूँदें चमक रही थीं।

"तुम्हारी दासी हूँ न!" हँस कर निर्मला ने कहा—"चलो, बहुत खुशामद हो चुकी। मैंने तुम्हारा महत्व आज जाना। मेरे भाग्य से किसी की भी तुलना नहीं हो सकती। उठो, खाना खायें, मैंने आज तुम्हारे लिये अपने हाथ से मिस्सी रोटी बनाई है।"

पति-पत्नी हँसते हुए डाइनिंग रूम की ओर चले। निर्मला ने मन ही मन भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहा—"हे प्रभु, तुम धन्य हो। दासी को इसी प्रकार स्वामी के चरणों में अन्तिम श्वास भी ले लेने देना। इस से अधिक बड़ा वरदान मेरे लिये कोई भी नहीं। इसी देवता के चरणों में गति पाने से ही मेरा सौभाग्य है।'

पति के हृदय में भी पत्नी के प्रति श्रद्धा-प्रवाह बह रहा था।

भूत जीवन में आज का सा आनन्द निर्मला को कभी भी नहीं मिला था। उसका पति बहुत सुन्दर भी न था और न रसिक, पर जीवन में आज पहली ही बार निर्मला ने समझा कि सुखी-गृहस्थ-जीवन न तो धन पर ही निर्भर है और न रूप पर, न

जरूर होता है।

रसिकता पर और न रोमान्स पर। सुख निर्भर होता है सद्भाव और हृदय की महानता पर।

खाना खाने के बाद पान लेते हुए कुमार ने कहा—"निम्मी, आखिर कौन जीता ?"

"तुम।" निर्मला ने कहा।

"नहीं, तू।"

"नहीं तुम ही सदा विजयी रहो। मुझे जो आनन्द तुम से हार कर आता है, वह जीत कर कभी भी न आयगा।"

इस जीत के साथ ही पति ने ज़बरदस्ती से और भी इनाम वसूल कर लिया। निर्मला लज्जित हो गई।

(xvii) Milan

मिलन

"बहिन, तुम्हारे ही हाथों प्राण बचने हैं यह जानती तो तुम्हें कष्ट देकर प्राण रखने का मोह ही न करती।"

"चुन्नी, मेरी ही सेवा से तू युग युग तक सौभाग्यवती बनी रहे इस से बढ़ कर मेरा भाग्य कहाँ ?"

"तो जीजी मुझे क्षमा कर चुकी हो न ? और तुम क्षमा करो या न करो, जीजी, प्रायश्चित्त तो मैं स्वयं भी कम नहीं कर रही हूँ। फिर मुझे तुम से सेवा लेने का अधिकार भी क्या है ?"

"क्यों री, तू मेरी छोटी बहिन नहीं है क्या ?" स्वर को स्वाभाविक करने का यत्न करते हुए भी आँसुओं से भरे गले का उच्छवास छुपा न रह सका। स्वर भारी था।

"हाँ, यही छोटी बहिन होने का दण्ड है न कि नौ नौ वर्ष तक पता ठिकाना भी न हो। मैंने दोष अवश्य किया था। प्राण देकर भी उसका प्रायश्चित्त नहीं होगा। किन्तु जीजी, क्या तुम मुझे उस दिन सब कुछ क्षमा करके नहीं चली थीं, सो क्या इस नरक की यन्त्रणा झेलने को ? बहुत हुआ, जीजी तुम अपना घर

सम्भालो। चुन्नी के लिए संसार में स्थान की कमी नहीं।"

प्रलोभन सावित्री के रास्ते में बड़े ज़ोर से आ खड़ा हुआ। इनका भी जीवन सुखी नहीं, यह देखकर सावित्री एक ईर्षा-मिश्रित आनन्द न छोड़ सकी। फिर भी चुन्नी का वेदना से भरा रोगी मुख और करुण स्वर सुन कर उसका हृदय भर आया।

"क्यों जीजी, तुम भी यहीं हो। निर्मल भी यहीं कहीं है। हमें इस ज़िले में आये दो मास हो गये हैं। यदि मैं इस बार मृत्यु-शय्या पर पड़ी न होती, तो शायद तुम्हें मिलने का अवकाश भी न होता। मुझे ही समाचार भिजवा देतीं, तो सिर के बल दौड़ी आती।" अभिमान से मुँह फुला कर चुन्नी चुप हो गई।

डाक्टर सावित्री ने रोगिणी चुन्नी के पीले गाल थपथपा कर कहा—"चुन्नी, मुझे तो पता ही न था। पता होने पर आती ही सो तो कह नहीं सकती, पर देखने को जी अवश्य तड़पता था। अच्छा सन्ध्या हो रही है चलती हूँ!"

"नहीं, नहीं जीजी, आज न जाओ। नहीं तो कल मुझे जीवित नहीं पाओगी।"

"क्यों री, इतने दिन तो जीजी के बिना मानो रहती ही न थी।" कह कर सावित्री उठ खड़ी हुई।

उदास से स्वर से चुन्नी ने कहा—"जीजी, तुम जिनके डर से भाग रही हो वह आज इस घर में नहीं सोयँगे। रोगिणी की इतनी चिन्ता उन्हें नहीं। वह कल ही दौरे पर चले गये हैं। अब तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी भले ही चली जाओ।" कह कर

चुन्नी ने करवट बदल ली। शायद आँसू छिपाने के लिये। सावित्री को कुछ बदला-सा मिलने का आनन्द लगते हुए भी अच्छा न लगा। पत्नी की ऐसी चिन्ता-जनक अवस्था में पति दौरे पर है। दयार्द्र होकर उसने कहा—"मैं नहीं जाती री चुन्नी, अब तो प्रसन्न हो।"

"नहीं, तुम जाओ। सब जाओ।" हठ करके चुन्नी ने कहा। सावित्री ने देखा कि आज की चुन्नी नौ वर्ष पूर्व की चन्नी से रंच-मात्र भी भिन्न नहीं है। ईर्षा का मल धुलता जा रहा था। चुन्नी में दोष पा सकने की दृष्टि ही सावित्री के पास अब न थी। फिर चुन्नी ने उसका छीना ही क्या था? उसने तो कभी कुछ पाया ही न था। उसका बहीखाता तो अभी कोरे का कोरा ही था। शून्य था। चुन्नी की भयंकर बीमारी में इधर सावित्री एक सप्ताह से आ रही थी। अब चुन्नी अच्छी थी। केवल उसी दिन जिस दिन उसने इस घर में प्रवेश किया था उसने अनिल को देखा था। आश्चर्य से अनिल ने कहा था "सावित्री, तुम डाक्टर?"

सावित्री आश्चर्य से भर कर भी संभल गई। बिना कुछ उत्तर दिये ही दासी के पीछे अन्दर चलती गई। उसके पश्चात् सावित्री सदा उस समय ही आती थी जब अनिल के कचहरी का समय होता था। अनिल के सामने पड़ने की उसकी इच्छा ही नहीं होती थी। कर्त्तव्य के अनुरोध उसे जाना ही पड़ता था। वह भी बड़े दुःख से। नारी-हृदय रो उठता था, पर सावित्री बड़े ज़ोर से उसे मसल कर कहती—"यही तो नारी होने का सब से बड़ा दण्ड

है। इसे तुझे सहना ही पड़ेगा। इससे छुटकारा पाने की कहीं भी संभावना नहीं, कभी भी नहीं।

चुन्नी के बराबर ही पलंग पर पड़ी सावित्री सोच रही थी। बालक नवीन उसके पास ही सो रहा था। इसी बीच उसने माँ के कहने से इन से माँ का नाता भी जोड़ लिया लिया था। सावित्री कहती ही रही, "भइया मैं तेरी मौसी हूँ माँ नहीं।" पर चुन्नी के कहने से बच्चा माँ ही कहता रहा। सावित्री के शायद स्टेथस्कोप पर उसका विशेष लोभ था। आठ दिन के ही संसर्ग में बच्चा प्यार से भर देने वाली माँ पर लट्टू ही हो गया। सावित्री सोचने लगी,—"एक दिन यह सब कुछ मेरा था और यह अबोध बालिका थी मेरी मेहमान। आज सब कुछ पति-पुत्र-सहित सब कुछ इसका है और मैं इसकी मेहमान मात्र। आज यहाँ रह सकूँगी, पर कल ही फिर मुझे यहाँ से चल देना पड़ेगा। सृष्टि में जिस पर मेरा सब से अधिक अधिकार है उसकी दृष्टि में आज मैं पड़ना भी नहीं चाहती। कितनी विडम्बना है विधि की। पर आज दुःख क्यों? एक दिन सब कुछ ही तो छोड़ कर मैं चली आई थी स्वयं इच्छा से आज फिर उस पर लोभ क्यों?" सावित्री की आँखें आँसुओं से भर उठीं। तकिया गीला हो उठा। फिर भी आँसू तो मानो थमते ही न थे।

सावित्री ने कहा—"हे विश्वनाथ, हे प्रभु, इस कुरूप स्त्री के परम पूज्य स्वामी अब अपनी शरण से अलग न करना नाथ। लौकिक स्वामी से तिरिस्कृत, परित्यक्त होकर एक दिन तुम्हारी

शरण आई थी और तुमने आदर से ग्रहण किया था। आज जब कि स्वेच्छा से यह शरीर, मन, प्राण और जीवन तुम्हारी ही सेवा में उत्सर्ग कर देना चाहती हूँ तो फिर यह प्रलोभन कैसा? यह छल कैसा, नाथ? गुरु जी कहते थे—भगवान की शरण केवल मात्र उसकी कृपा से ही मिलती है। स्वामी को पत्नी की आवश्यकता नहीं, किन्तु देश को तो सेविका की आवश्यकता है ही। माँ को तो पुत्री की आवश्यकता है ही, फिर यह मन का चाञ्चल्य क्यों? तुम्हारी शरण में आकर एक दिन व्रत-नियम-उपवास सब ही किये थे। किन्तु शान्ति नहीं मिली। शास्त्र-अध्ययन और उपासना से भी शान्ति नहीं मिली। मन्दिर की परिक्रमा और तीर्थ-यात्रा से भी शान्ति नहीं मिली। फिर रोगी की सेवा में रत हो गई। नाथ प्रत्येक रोगी के रूप में भी तुम्हारा ही रूप देखना चाहा, पर शान्ति नहीं मिली। गुरुदेव ने कहा—माँ दीन भारत की दीनता ऐसे न मिटेगी, उसके लिये करनी पड़ेगी क्रान्ति। तैयार हो तुम माँ? भगवान् की प्राप्ति दीन की दीनता नष्ट होते ही हो जायगी माँ। भगवान तुम से दूर तो हैं ही नहीं। इस साधना में रत होकर निज स्वार्थमय इच्छापूर्ण जीवन का बलिदान करो। मैं भी तुरन्त तैयार हो गई, किन्तु तब जीवन था ही कहाँ? आज जब जीवन फिर मेरे द्वार पर खड़े होकर आकर्षित कर रहा है तब भी क्या साधना ही पर दृढ़ रहूँ? अथवा नहीं, नहीं यह क्षेत्र, यह सब कुछ एक बार जब छोटी बहिन को दान कर चुकी हूँ तो फिर दान देकर ग्रहण कैसा? सावित्री का क्षेत्र वही है जो उसने चुन लिया है।

चुन्नी, चुन्नी मुझे अपने भोले स्नेह में न बाँध। तेरे कल्याण के लिये ही मुझे तेरा त्याग करना होगा। पर मेरे रहने से भी चुन्नी की किसी प्रकार हानि नहीं होगी। चुन्नी के स्वामी ने तो मुझे किसी दिन भी स्नेह का दान नहीं दिया। पर छीः, यह क्या चुन्नी के स्वामी के प्रति मेरा आकर्षण ही क्यों ? वह तो मेरी छोटी बहिन है न ? नारी का सब से बड़ा अभिमान सबसे बड़ा बल त्याग कर ही मैं भगवान् की शरण ढूँढ सकी थी। अब उसे छोड़ न सकूँगी। चाहे शान्ति मिले अथवा अशान्ति। जीवन का ध्रुव सत्य जो पा चुकी हूँ उसे यत्न करके भी खोऊँगी नहीं। इच्छा करने पर भी खो न सकूँगी।" उधेड़-बुन में सावित्री को सूर्योदय हो गया।

सुबह सावित्री चुन्नी को स्पञ्ज कराने के लिए आई। चुन्नी तो नर्स से स्पञ्ज करवाती ही न थी और अब तो बहिन थी ही। हाथ पकड़ कर दीनता से चुन्नी ने कहा—"बहिन, एक बात मानोगी ? सावित्री सिर से पैर तक काँप उठी "कह न, बहिन, क्या कहती है ?"

"मानोगी ?"

"मानने की हुई तो ?"

"दीदी, अब तो मेरा अपराध क्षमा कर अपना घर-पति-पुत्र सम्भालो। यह सब मुझसे नहीं होता, दीदी।" चुन्नी रो पड़ी। अपना अपराध सौ गुणा होकर उसे कष्ट देने लगा। बिच्छू दंशन सदृश पीड़ा से चन्नी काँप उठी।

सावित्री ने एक मिनिट चुप रहकर तौलिया कुर्सी की मेज़ पर रख दिया। स्वर को सहज बनाते हुए बोली—"छीः, चुन्नी, तेरा पति, छोटी बहिन का पति, मेरा आशीर्वाद का पात्र हो सकता है बहिन। मुझे पाप में न घसीट।" रुलाई छाती में भर आई। पर बाहर न आई, न आई।

"दीदी, अपनी चरण रज दो, तुम धन्य हो। पर मैं अभागिन तुम्हारे उत्कट-दान का भी उपभोग न कर सकी। मेरा भाग्य! पर अब हज़ार अपमान होने पर भी तुम्हारे दान का समस्त हृदय से आदर कर सकूँ। यही आशीर्वाद दो, बहिन!"

सावित्री कुछ न समझ कर चुप हो रही पर चुन्नी ने पड़े पड़े ही हाथ झुका कर सावित्री के चरण छूकर अपने माथे से लगाये।

"दीदी, तुम किस धातु की बनी हुई हो, यह शायद जीवन में कोई भी नहीं समझ पाया। तुम्हारे स्वामी भी नहीं। चुन्नी के स्वामी भी नहीं, और कोई भी नहीं। फिर कभी यह दान दी हुई वस्तु स्वीकार करने की बात कह कर तुम्हारा अपमान करने की, तुम्हें छोटा बनाने की कोशिश न कर सकूँगी। पर वचन दो दीदी, तुम कभी और कहीं भी क्यों न हो अपनी इन दो छोटी लड़कियों के लिये भगवान् के निकट यही प्रार्थना करोगी कि यह अपनी माँ के अनुरूप न बन कर अपनी सच्ची माँ तुम्हारे ही अनुरूप बनें। यही मेरे जीवन का सब से बड़ा आशीर्वाद, सब से पुण्यमय वरदान होगा। शेष सब तो अभिशाप है ही।"

"ऐसा न कहो रानी, भगवान तुम्हें चिर-सौभाग्यवती बनायँ। तुम से भी अधिक सुख-सौभाग्य तुम्हारी ये नन्ही प्रतिमूर्तियाँ पायँ।"

"सो नहीं जीजी, दुःख और सुख दोनों में ही तुम्हारे समान बन सकें इन्हें ऐसा आशीर्वाद दो। दीदी तुम्हारे समान, जिसने संसार में सब को सब कुछ देना मात्र ही सीखा है, जिसके हिसाब में, जिसकी संचित पूँजी में, देना ही देना है, पावना कभी किसी का कुछ नहीं, उससे बढ़कर सुखी संसार में और कौन है? वह महान् है दीदी।"

"पगली, अपनों को सब ही आदर देते हैं। तू कुछ नई बात तो नहीं कर रही है न?"

"सो बात नहीं है, दीदी, मुझे भुलाने का यत्न मत करो। जीवन और मृत्यु के सन्धि-स्थल पर खड़े होकर आज ही मैंने सत्य के दर्शन किये हैं। उसे भुलाने का यत्न भयावह होगा। जिन्हें सत्य के कभी दर्शन ही नहीं हुए उनकी बात जाने दो, पर मैं सत्य के दर्शन कर चुकी हूँ, अब धोखा नहीं खाऊँगी। पहले तो इच्छा होती थी कि जीवन-लीला का यह अध्याय समाप्त हो जाय। पर अब इच्छा होती है कि एक बार फिर जी उठूँ। इस बार फिर जिला दो, जीजी, मैं भी इस सत्य को जीवन में ग्रहण कर सकूँ।" शक्ति क्षीण हो गई। चुन्नी एक ओर सिर ढलका कर चुप हो गई।

"पगली, अब तो तू ठीक हो गई है। दुर्बलता है, सो भी ठीक हो

जायगी। पर अधिक बोला न कर। आज स्पञ्ज नहीं करना होगा। बड़ी कमज़ोरी हो रही है।

आदेश कर दासी आकर बर्तन ले गई तथा स्थान स्वच्छ कर दिया गया। सावित्री और कहीं आ-जा भी न सकी। आज उसका मन शान्त था। उसे अनिल की बिलकुल भी याद नहीं आती थी। नारी नारीत्व का भी त्याग कर बैठी थी। उसके सम्मुख सत्य की ज्वलन्त मूर्ति, नारायण की नर-रूप प्रतिमा ही घूम रही थी। महान व्रत की महान साधना के यज्ञ में प्रथमाहुति देने के लिये गुरु को उसकी आवश्यकता है। कितना बड़ा गौरव है, पर कितना चुपचाप अँधेरे में किया हुआ महान् त्याग! नारी स्वार्थपर भी हद दर्जे की होती हैं पर उसके समान त्याग सम्भवतः कोई भी नहीं कर पाता। सब कुछ संचय करके अन्त में मुक्त-हस्त हो सब कुछ दान कर देने की क्षमता उस ही में तो है। अन्य किसी में भी नहीं। यही तो नारी का सर्वोत्कृष्ट रूप है। यही उसकी ज्योति है।

(xviii) Bali-Path

बलि-पथ

"बलि-पथ सरल नहीं होता, देवि। यह फूलों की नहीं, शर-शय्या है।"

"सो मैं जानती हूँ।" स्वर दृढ़ था।

"यहाँ यश नहीं, प्रशंसा नहीं, निन्दा भी नहीं। जनता की उत्सुक दृष्टि भी नहीं। ऐसे पथ पर कार्य कर सकोगी, देवि?

"कर सकूँगी, महाराज।" स्वर में कठोरता अधिक थी।

"बलिदान देना होगा। दोगी?"

"क्या?"

"सर्वस्व।" प्रश्न-कर्ता शंकित था।

"सो सब दे चुकी हूँ।"

"उससे भी अधिक।"

"वह क्या?"

"अस्तित्व। मनुष्य रूप में सत्ता। माँ के कार्य के लिये आप को यह रूप सर्वथा मिटा देना होगा। इस अस्तित्व का कुछ भी चिन्ह बाकी न रहेगा।"

"सब कर सकूँगी।" सावित्री हँस पड़ी। इस अस्तित्व

का उसके निकट मूल्य ही क्या था ? यह तो एक भ्रम था। परीक्षा अभी बाकी थी।

"शारीरिक कठिनाई झेल सकोगी ?"

"सो क्या आपने देखा नहीं है ?"

"उससे भी अधिक। कठोर कष्ट। समय पड़ने पर जीवित अग्नि में जलना भी पड़ेगा। निराहार रहना तो मामूली सी बात है।"

"स्त्रियाँ सती होती थीं। व्रत, उपवास तो आज भी करती हैं। सो आप शायद भूले न होंगे ?"

"नहीं, माँ भूल सकूँगा भी नहीं और तालाब के तट पर मृत बालक का दुर्गन्धयुक्त शव लिये खड़ी माँ का रूप भी नहीं भूल सकूँगा। हमें ऐसी ही माँ की आवश्यकता थी। जिसका ध्येय समाज-सेवा से बढ़ कर हो। जो दीन के आगे, भूखे के आगे कुछ टुकड़े ही फेंक कर न रह जाय वरन उसके भूखे रहने का कारण ही मिटा दे। अन्न के चार दानों से संसार भर के भूख-प्यास से जर्जरित व्यक्तियों का भला नहीं हो जायगा, माँ ! उस के लिये महान् बलिदान करना पड़ेगा और वह बलि-पथ ही हमारे जीवन का ध्रुव-तारा है। उसी बलि-पथ की हमें खोज है। माँ, भारत के सच्चे अगुआ संन्यासी विलासी हो गये। माँ कातर स्वर से रो उठी, पर वासना के नशे में चूर उसकी पुकार सुनने के लिये ेई भी तय्यार नहीं था। आज का भारतीय संन्यासी त्याग का . . नहीं भोजन का भट्ट है। भारत के गृहस्थ

पुरानी टेक निभा कर आज भी स्वार्थरत संन्यासी को अन्न दे डालते हैं। पर वास्तविक संन्यासी का यह पथ नहीं। पृथ्वी मार्ग पर उसका केवल एक ही पथ है और वह है बलि-पथ। उसकी खोज में हमें जाना होगा, उत्सर्ग हो जाना होगा। हमारे बलिदान से देश की सन्तान जाग्रत होकर चारों ओर देखेगी। यही हमारे जीवन का अखण्ड सत्य है। इसी से रोग की वास्तविक औषधि मिलेगी, जिसे जिह्वा पर लाना भी आज दिन अन्याय समझा जाता है। चलो, उसी पथ पर चलें।"

"मैं तैयार हूँ, महाराज।"

"तो माँ कल सन्ध्या समय आऊँगा। फिर सोच लो, पथ कठिन है, कार्य अत्यन्त दुरूह है। सफलता की आशा बिलकुल ही नहीं, केवल निष्काम कर्म का प्रयत्न ही करना होगा। यदि हृदय में यथेष्ठ बल हो तो आना। अन्यथा इन्हीं समाज-सेवियों की तरह चन्दे इकट्ठे करके सभाओं की मन्त्री—प्रधान बन कर जीवन के शेष दिन भी व्यतीत कर डालो। यश भी मिलेगा, प्रशंसा भी, आदर भी, सम्मान भी और कभी कभी रजत मुद्रिका भी। इतने पर भी स्वर्ग में इस पुण्योपकार के बदले सीट पाने की आशा मुफ्त ही।"

"मैं तैयार हूँ, मुझे सच्चा कर्म चाहिये। रोग की औषधि ढूँढ़नी है। उसका प्रतिकार करना है। और अस्तित्व ही जब मेटने चली हूँ तो फिर यश का लोभ कैसा? और मेरे यश का लाभ भी किसे होगा, महाराज! मैं अवश्य चलूँगी। मेरा पूर्ण निश्चय है,

दृढ़ निश्चय है !"

"हे प्रभु, तुम सत्य हो। माँ, कल तैयार रहना।"

"आज भी तैय्यार हूँ, इस समय भी।" सावित्री ने शुष्क स्वर में कहा।

"यही तो वास्तविक कर्त्तव्य की प्रेरणा है। तत्परता है माँ। लिख रखो भगवान् सत्य है। हे प्रभु, सुन लो, तुम सत्य हो।"

वृद्ध संन्यासी बालकों की तरह प्रसन्न चित्त से चल पड़ा। जब तक सुनाई देता रहा, सावित्री एकाग्र मन से संन्यासी की खड़ाऊँ का शब्द सुनती रही। शब्द न सुनाई देने पर धीरे से उठ कर घर की ओर चल पड़ी। उसके चित्त में आज स्फूर्ति थी, पर इच्छा होती थी कि अस्तित्व मिटाने से पूर्व एक बार, केवल एक बार चुन्नी के स्वामी, नहीं, नहीं अपने युगयुगान्तर के स्वामी को देख भर लेती। एक बार उन चरणों के दर्शन कर लेती और बस।

Materialist

Buss

(xviii) ~~Buss~~

बस

"जीजी, स्वामी का प्रेम क्या लोभ की वस्तु नहीं ?"

"अवश्य है निम्मी। पर उनके लिये जो सौभाग्यवती हैं। जिनके देवता प्रीति का माप शरीर पर भगवान के मले हुए रंग से न करके शरीर के भीतर प्रभु-निर्मित हृदय से करते हैं।" धैर्य्य से सावित्री ने कहा यद्यपि आज यह प्रश्न उस के लिये कोई महत्त्व नहीं रखता था। सावित्री की मृत्यु हो रही थी न? उसका पुनर्जन्म होगा।

"पर स्वामी की भूल होने पर भी, क्या चेत आने पर नारी उसे क्षमा नहीं कर देती, दीदी ?" निर्मला का स्वर शान्त था।

"निम्मी मेरी, नारी के निकट स्वामी का कुछ भी अक्षम्य नहीं। कुछ भी अपराध नहीं। पर जिसने किसी दिन भी स्वामी की नारी बनने का ही अधिकार न पाया हो वह किस मुँह से स्वामी को क्षमा करने जायगी ?"

आज अपने नारीत्व के अपमान की सब से लज्जापूर्ण बात भी कह देने में सावित्री को ज़रा भी लज्जा न थी। मनुष्य को जहाँ खड़े होकर लज्जा, मान, अपमान छू पाते हैं सावित्री उस स्थान से बहुत ऊपर उठ चुकी थी। अब उसके निकट लज्जा, मान और

अपमान कुछ था ही नहीं।

निर्मला कुछ क्षण को अवाक् रह गई। आज सुबह ही आकर चुन्नी निर्मला से प्रार्थना कर गई थी कि किसी तरह दीदी से अपना घर सम्भालने की स्वीकृति ली जाय। निर्मला ने कठोरता से कहा था,—"चुन्नी, पत्र में जिस दिन पढ़ा था कि तेरी अकाल मृत्यु हो गई, तब ही खूब जी भर कर रोई थी, आज फिर जी जलाने और रुलाने को सशरीर क्यों आ खड़ी हुई। मैं तो आँसुओं से तेरा पिण्ड-दान भी कर चुकी हूँ।"

चुन्नी ने पीढ़ी खींच कर बैठते हुए कहा—"तेरे पिण्डदान से तो मेरी तृप्ति न हो सकेगी न! जिनके पिण्ड-दान से हो सकती थी उन्होंने दिया नहीं। उन से दिलवा दे। यही प्रार्थना करने आई हूँ।" निर्मला से रहा न गया।

दोनों सखियाँ बहुत देर तक मिल कर रोती रहीं। बहुत सी बातें होती रहीं। इस बार सावित्री से मिल कर चुन्नी ने भी 'देने' का पाठ सीख लिया था। अनिल भी सेवा और निर्भरता देख कर चुन्नी के इस नये परिवर्तन से चुन्नी के अधिक निकट आगये। फिर भी चुन्नी इन सुख के दिनों में भी दीदी को भूल न सकी। इस बार उसकी उत्कट इच्छा दीदी को कुछ देने की थी। चलते समय उसने निर्मला से कहा—"सुनती हूँ, बहिन तुम्हारी बात बहुत मानती हैं। मेरी तो अब कहने की हिम्मत नहीं होती। अच्छा, तुम्हीं उन्हें किसी तरह राजी कर दो।" दीन स्वर से चुन्नी ने कहा।

"तू तो अब अपना सर्वनाश करने को पागल हो रही है। यदि बहिन आ गईं तो तेरा क्या होगा?" हँस कर निर्मल ने कहा।

"श्राद्ध।"

"नहीं, तू यहाँ आजाना। तेरे जीजा भी अत्यन्त रसिक मिज़ाज के हैं।"

"देखो, गाली दोगी तो फिर आऊँगी ही नहीं। देख मुन्नी तेरी मौसी कैसी दुष्ट प्रकृति की हैं।"

"नहीं, तुम्हारे आने पर भी मैं घर छोड़ कर भागूँगी नहीं। मार्ग उतना आसान नहीं है।" हँसी से निर्मला ने कहा।

"तब तुझे विष दे डालूँगी, वह मार्ग तो आसान है न?"

"पर जिन्होंने तेरा भी सर्वनाश किया और उसका भी, वही महात्मा क्यों नहीं उनके श्रीचरणों पर सिर रखते। जो तू बावली हुई फिरती है। दोष तो अधिक उनका ही है।" निर्मला ने गम्भीरता से कहा।

"बहिन, उनसे भी प्रार्थना करती रहती हूँ। असल में मेरी बात कोई भी नहीं मानता। तू भी तो नहीं मानती।"

"चल, तेरी तेरे जीजा से मुलाकात करवा दूँ। विवाह पर भी तो तू नहीं आई थी।"

"सो फिर कभी करूँगी, निम्मी, फुरसत से।"

"सजधज कर, भई तुझ से तो डरना पड़ेगा।"

"हट पगली, अब तो मैं बुढ़िया हो गई। तीन बच्चों की

माँ हूँ ।"

"ओहो ।"

"अच्छा चलती हूँ । इतवार को तू ज़रूर आना । जीजा जी को भी लाना ।"

"मैं आजाऊँगी । अपने जीजा जी से तू स्वयं ही कह जाती तो आने की भी पूछ लेती । मैं क्या कह सकती हूँ ।"

"अच्छा, फिर किसी दिन निमन्त्रण दे जाऊँगी । तू बहिन से कहना ना भूलियो ।"

"अच्छा ।"

"नमस्ते !"

नमस्ते के साथ दोनों सखियाँ बिदा हुईं । इसके बाद ही सावित्री निर्मला को देखने आ गई । निर्मला ने ऊपर लिखी बातें सावित्री से कीं । सावित्री शान्त निर्विकार चित्त से उत्तर देती रही । आते समय सावित्री ने कहा—"निम्मी, तुझे चुन्नी फिर मिले तो कह दीजो कि मैं इस जन्म और दूसरे जन्म दोनों में ही उसकी मंगल-कामना करती रहूँगी । भगवान् उसे अक्षय पुण्य-सुख दें । वह सचमुच ही मेरी छोटी बहिन है ।"

"यह सब तुम्हीं न उस से कह देना, दीदी ! तुम से सुन कर उसे अधिक प्रसन्नता होगी ।"

"हाँ, सो तो कहूँगी ही पर तू भी याद रखना ।"

बच्चों को प्यार करके सावित्री घर आ गई । सन्ध्या होने को ही थी । एकाएक सावित्री का द्वार खनक उठा । सोचा, होगा कोई रोगी । चुपचाप बैठ गई । खड़का फिर हुआ और इस

बार ज़ोर से। सावित्री ने धीरे से साँकल खोल दी। आश्चर्य से फटी फटी आँखों से सावित्री ने देखा अनिल खड़ा था। वही लंबा पतला शरीर, वही कोमल कमनीय कान्ति ! बाल सुन्दरता से माथे पर बिखरे हुए थे।

"यह क्या सावित्री, तुम्हारे द्वार पर आया हूँ, तुमने बैठने को भी न कहा ?"

"आओ।" संयत स्वर में सावित्री ने कहा।

"तुम्हे लिवाने आया हूँ, सावित्री ! मुझे क्षमा करो। चुन्नी ने मुझे तुम्हारे वास्तविक रूप का ज्ञान करा दिया। मुझ नीच को क्षमा करो। चुन्नी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।" दीनता से अनिल ने कहा।

"और तुम नहीं ?" नारी-सुलभ अभिमान जाग उठा।

"मैं भी तुम्हारे लिये अत्यन्त व्याकुल हूँ।

मन ही मन चरण-स्पर्श कर सावित्री ने कहा—"मेरे देवता, तुम धन्य हो। तुमने मेरी अंतिम साध पूरी की। मेरा मान रख लिया। पर मैं तुम्हारे साथ जा न सकूँगी। एक दिन मैं ने सब कुछ देना चाहा था कुछ भी न चाह कर मुक्तहस्त होकर। पर स्वामी तुमने स्वीकार नहीं किया। आज तुमने याचक बनकर मेरे द्वारपर आकर मेरा मान रख लिया। मुझे आदर दिया, यही मेरे जीवन के पुण्यों का यथेष्ट पुरस्कार है। मेरे स्वामी, तुम अब मेरी छोटी बहिन चुन्नी के स्वामी हो। वही रहो। जितना आदर देकर मुझे धन्य कर दिया वही मेरे लिये बहुत है।" कह कर सावित्री ने स्वामी के

चरण छू लिये।

"फिर नहीं चलोगे ?"

"नहीं।"

"कभी भी नहीं ?"

"नहीं।"

"जाऊँ ?"

"जाओ।"

[illegible]

दूर हो गई।

[illegible]